वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

वर्ष ६० अंक ४ अप्रैल २०२२

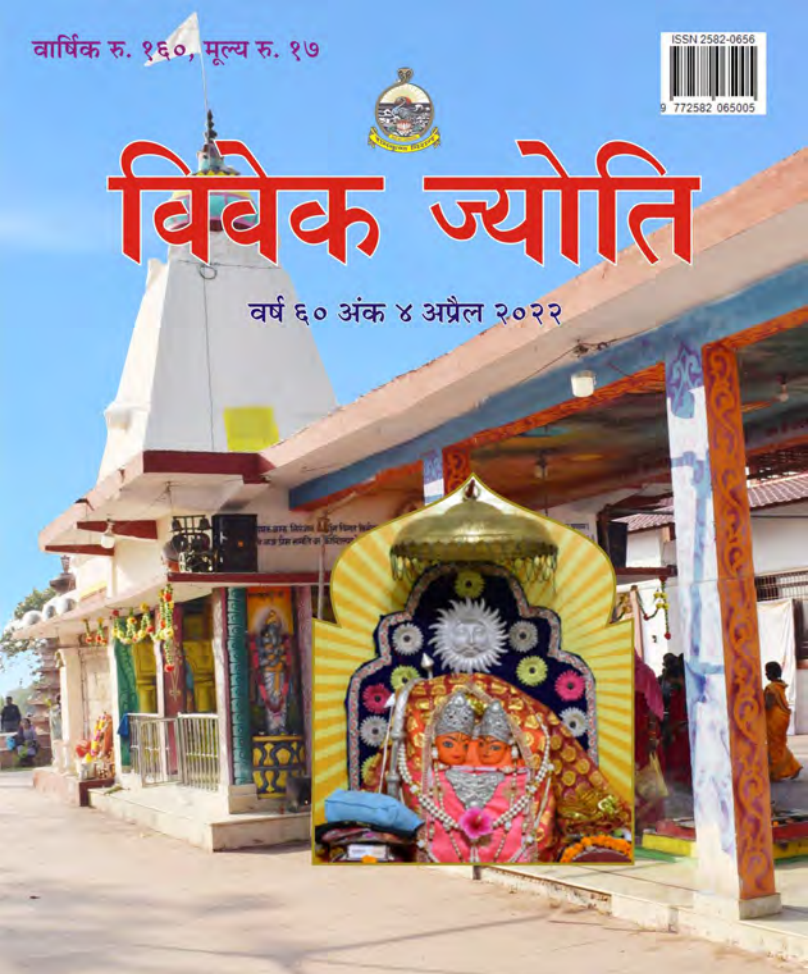

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ४

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

चैत्र, सम्वत् २०७९
अप्रैल २०२२

अनुक्रमणिका

* हनुमानजी को अपना आदर्श बनाओ : विवेकानन्द १५०
* स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी (विनायक लोहानी) १५३
* शक्तिपीठेश्वरी सती (अरुण चूड़ीवाल) १६३
* (बच्चों का आंगन) गलतियाँ नहीं होंगी, तो विद्यार्थी अध्ययन कैसे करेंगे? (स्वामी गुणदानन्द) १७३
* भारतीय संस्कृति का शाश्वत प्रवाह (राजकुमार उपाध्याय 'मणि') १७५
* (युवा प्रांगण) धन्य है कचरू ! धन्य है उसकी देशभक्ति ! (मीनल जोशी) १८०
* ईश्वर के चरणों में ही स्थायी सुख है (स्वामी सत्यरूपानन्द) १८७
* श्रीसंकटमोचनस्तुतिः (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) १७२
* (कविता) मंगलमय हो नव-सम्वत्सर (आनन्द तिवारी पौराणिक) १७२
* गीता पढ़ने का अधिकारी १६२

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १४९
पुरखों की थाती १४९
सम्पादकीय १५१
श्रीरामकृष्ण-गीता १५९
आध्यात्मिक जिज्ञासा १६०
रामराज्य का स्वरूप १६८
प्रश्नोपनिषद् १७४
सारगाछी की स्मृतियाँ १८२
गीतातत्त्व-चिन्तन १८४
साधुओं के पावन प्रसंग १८८
समाचार और सूचनाएँ १९०

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में चन्द्रपुरी (चन्द्रखुरी), रायपुर, छतीसगढ़ में माता कौसल्या के मन्दिर को दर्शाया गया है। विस्तृत विवरण हेतु पृष्ठ संख्या १५१ द्रष्टव्य।

अप्रैल माह के जयन्ती और त्यौहार

१०	रामनवमी
१२, २६	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री राज सिंह, वसुन्धरा इन्कलेव, दिल्ली	१०,०००/-

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर, (छ.ग.)

A branch centre of Ramakrishna Mission, Belur Math, Howrah (W.B.)
Koni Road, P.O.Koni, Bilaspur (C.G.) - 495009
Ph.: +918240129728, Email : bilaspur@rkmm.org

प्रिय भक्तवृंद एवं मित्रगण

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर, छ.ग. की स्थापना २२ फरवरी २०१९ को रामकृष्ण मिशन, बेलूड मठ, हावड़ा, की नई शाखा के रूप में हुई। पूर्व में यह श्रीरामकृष्ण सेवा समिति के नाम से संचालित था, जिसकी स्थापना स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने १९६७ में की थी। इस केन्द्र में निर्मित मंदिर की आधारशिला तत्कालीन श्रीरामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज द्वारा वर्ष १९७७ में रखी गयी तथा मन्दिर का समर्पण तत्कालीन श्रीरामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज द्वारा १९९५ में किया गया।

वर्तमान में यह आश्रम ७.९ एकड़ भूमि पर अवस्थित है। यहाँ कुछ पुराने निर्मित भवनो में साधुनिवास, अतिथिगृह एवं बच्चों के लिए नि:शुल्क छात्रावास चलाया जा रहा है। यहाँ निर्मित सभी भवन समय के साथ-साथ जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, जिनका तत्काल पुनर्निर्माण करना आवश्यक हो गया है।

इन परिस्थितियों में निर्णय लिया गया है कि मरम्मत का कार्य तत्काल प्रारम्भ किया जाए और तदुपरान्त अन्य नये निर्माण कार्यों को हाथ में लिया जाए। इस हेतु सुझाव, सहायता एवं धनसंग्रह के लिए भक्तों की एक समिति गठित की गई है । पहले चरण में छात्रावास भवन एवं अन्य गतिविधियाँ जैसे, कोचिंग सेन्टर, कम्प्यूटर क्लासरूम तथा मेडिकल सुविधाओं के लिये बाह्य-रोग विभाग **(OPD)**, फिजियोथैरेपी तथा दंत-चिकित्सा -विभाग के संचालन के लिए भवन निर्माण किया जाना प्रस्तावित है । इन कार्यों को संपन्न करने के लिए अनुमानित लागत रु.१.७५ करोड़ आकलित है । यह कार्य आश्रम के वर्तमान अल्प आर्थिक स्रोतों से संभव नहीं है । अत: इन पुण्यकार्यों के लिए आप सबसे उदारतापूर्वक दान अपेक्षित है । आश्रम द्वारा क्षेत्र के भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये सभी मित्रों, भक्तों, ट्रस्ट, संस्था एवं कॉरपोरेट इकाइयों से अधिकाधिक सहयोग का विनम्र निवेदन है।

दान अथवा सहयोग राशि बैंक के **NEFT** या **RTGS** के माध्यम से नीचे दिए गए विवरण पर भेजी जा सकती है । सभी चेक, ड्राफ्ट अथवा मनी-ट्रांसफर, रामकृष्ण मिशन बिलासपुर के नाम से भेजें तथा इसकी सूचना अपने **PAN No.** एवं पूर्ण पते के साथ कार्यालय को प्रेषित करें। आश्रम को दिया गया दान **८०G** आयकर की धारा के अंतर्गत छूट प्राप्त है। श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द जी आप सभी पर कृपा करें।

प्रस्तावित भवन

Bank Name : State Bank of India
S.B A/c No. : 3885115151369
Branch name : Lodhipara Koni
IFSCCode : SBIN0018879

and

A/cName: Ramakrishna, Mission, Bilaspur
Bank Name : Bank of Baroda
S.B A/c No. : 06400100006990
Branch name : Bilaspur, Chhattisgarh
IFSCCode : BARBOBILASP (fifth character is zero)

आपका
प्रभुदाश्रित
(स्वामी सेवाव्रतानन्द)
सचिव
रामकृष्ण मिशन बिलासपुर

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

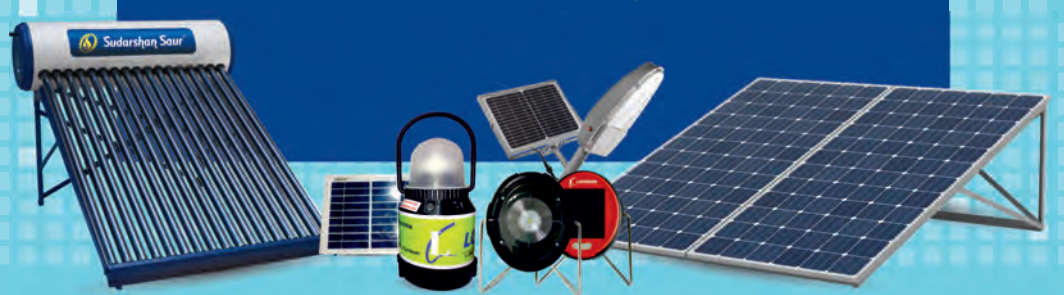

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **अप्रैल २०२२** **अंक ४**

ब्रह्मदेवकृतरामस्तुतिः

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम्।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्र सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम्।।

– हे सर्वव्यापक ! सभी की स्थिति के कारण, अध्यात्मज्ञानियों द्वारा हृदय के अन्तस्तल में ध्येय, ग्राह्य एवं त्याज्य में वर्गीकृत द्वन्द्वों से अतीत, सर्वोपरि, अद्वितीय, सत्तामात्र, सभी के हृदय में विराजमान तथा साक्षीरूप देव! मैं आपको वन्दन करता हूँ।

पुरखों की थाती

उपाध्यायात् दश आचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेण अतिरिच्यते ।।७५६।।
(मनु.)

– व्यक्ति के लिये लौकिक शिक्षा देनेवाले उपाध्याय की अपेक्षा पारमार्थिक शिक्षा देनेवाले आचार्य दसगुना श्रेष्ठ होते हैं। पिता सौ आचार्यों के तुल्य होते हैं और माता हजार पिताओं से भी अधिक श्रद्धा की पात्र होती है।

उष्ट्राणां च विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः।।७५७।।

– ऊँटों के विवाह के अवसर पर गधों का गाना चल रहा है। दोनों एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे हैं वाह, (ऊँटों का) क्या ही रूप है ! वाह (गधों की) क्या ही आवाज है !

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुः
अज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन।
येनावृतः कुरुते सम्प्रयुक्तो
घोराणि कर्माणि स दारुणानि।।७५८।।(महाभारत)

– हे राजन् ! मनुष्य का दूसरा कोई नहीं, बस एक ही शत्रु है और वह है अज्ञान। इसी अज्ञान के वशीभूत होकर वह भयंकर अनुचित कर्मों में प्रवृत्त होता है।

हनुमानजी को अपना आदर्श बनाओ : विवेकानन्द

स्वामीजी – ''पहले-पहल महापुरुषों की पूजा चलानी होगी। जो लोग उन सब सनातन तत्त्वों को प्रत्यक्ष कर गये हैं, उन्हें लोगों के सामने आदर्श या इष्ट के रूप में खड़ा करना होगा, जैसे भारत में श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महावीर तथा श्रीरामकृष्ण। देश में श्रीरामचन्द्र और महावीर की पूजा चला दे तो देखूँ?''

हमारे लिए इस समय किस आदर्श को ग्रहण करना उचित है?

स्वामीजी – महावीर के चरित्र को ही तुम्हें इस समय आदर्श मानना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये ! जीवन-मृत्यु की परवाह कहाँ? महाजितेन्द्रिय, महाबुद्धिमान, दास्यभाव के उस महान् आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गठित करना होगा। वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं ही हो जायेगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा, यही है सफलता का रहस्य ! **नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय** अवलम्बन करने योग्य और दूसरा पथ नहीं। एक ओर हनुमानजी के जैसा सेवाभाव और दूसरी ओर उसी प्रकार त्रैलोक्य को भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम ! राम के हित के लिए उन्होंने जीवन तक विसर्जन कर देने में कभी तनिक भी संकोच नहीं किया। राम की सेवा के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों के प्रति उपेक्षा, यहाँ तक कि ब्रह्मत्व, शिवत्व-प्राप्ति के प्रति उपेक्षा ! केवल रघुनाथ के उपदेश का पालन ही जीवन का एकमात्र व्रत, उसी प्रकार एकनिष्ठ होना चाहिए। खोल, मृदंग, करताल बजाकर उछल-कूद मचाने से देश पतन के गर्त में जा रहा है। एक तो यह पेट के रोगी मरीजों का दल और उस पर इतनी उछल-कूद? भला कैसे सहन होगा? कामगन्धविहीन उच्च साधना का अनुकरण करने के कारण देश घोर तमोगुण से भर गया है। देश-देश में, गाँव-गाँव में जहाँ भी जायेगा, देखेगा खोल-करताल ही बज रहे हैं ! दुन्दुभी-नगाड़े क्या देश में तैयार नहीं होते? तुरही-भेरी क्या भारत में नहीं मिलती? वही सब गुरु-गम्भीर ध्वनि लड़कों को सुना और बचपन से महिला-वाद्य सुन-सुनकर, कीर्तन सुन-सुनकर, देश स्त्रियों का देश बन गया है। इससे अधिक और क्या अध:पतन

होगा ! कवि-कल्पना भी इस चित्र को चित्रित करने में हार मान गयी है। डमरू, शृंग बजाना होगा, नगाड़े में ब्रह्मरुद्र ताल का दुन्दुभि नाद उठाना होगा, 'महावीर', 'महावीर' की ध्वनि तथा 'हर हर बम बम' शब्द से दिग्दिगन्त कम्पित कर देना होगा। जिन सब गीत-वाद्यों से मनुष्य के हृदय के कोमल भावसमूह उद्दीप्त हो जाते हैं, उन सबको थोड़े दिनों के लिए अब बन्द रखना होगा। ख्याल, टप्पा बन्द करके ध्रुपद का गाना सुनने का अभ्यास लोगों को कराना होगा। वैदिक छन्दों के उच्चारण से देश में प्राण-संचार कर देना होगा। सभी विषयों में वीरता की कठोर महाप्राणता लानी होगी। इस प्रकार आदर्श का अनुसरण करने पर ही इस समय जीव का तथा देश का कल्याण होगा। यदि तू ही अकेला इस भाव के अनुसार अपने जीवन को तैयार कर सका, तो तुझे देखकर हजारों लोग वैसा करना सीख जाएँगे। परन्तु देखना, आदर्श से कभी एक पग भी न हटना ! कभी साहस न छोड़ना ! खाते, सोते, पहनते, गाते, बजाते, भोग में, रोग में सदैव तीव्र उत्साह एवं साहस का ही परिचय देना होगा, तभी तो महाशक्ति की कृपा होगी?

(विवेकानन्द साहित्य, ६/१९६)

सम्पादकीय

विश्व का एकमात्र कौशल्या मन्दिर : श्रीराम का ममियौरा

भगवान श्रीराम के पावन चरित्र से भारतीय संस्कृति और भारत-जनमानस ओत-प्रोत है। उनकी दिव्य लीला से लोकमानस भक्तिरंजित है। उनकी पावन गाथा का लोक में सर्वत्र प्रेम और श्रद्धा से कथन-वाचन-गायन कर कलाकार अपनी कला की सार्थकता और जीवन को धन्य मानते हैं, भक्त, सन्त अपनी साधना की परिपूर्णता मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी और वाल्मीकिजी ने भी श्रीराम के चरित को लिखकर अपनी लेखनी को कृतार्थ किया। लेकिन भगवान श्रीराम की जननी माता कौशल्या का चरित्र अप्रतिम, अनुपम, अद्वितीय एवं पूज्य है, जिन्हें श्रीराम की जननी होने का गौरव प्राप्त है। आइये, थोड़ी-सी चर्चा माता कौशल्याजी के विश्वप्रसिद्ध मन्दिर और उनके पावन चरित की करते हैं।

विश्व में एकमात्र माता कौशल्या का मन्दिर

ऐसी महीयसी माता कौशल्या का सम्पूर्ण विश्व में मात्र एक मन्दिर है, जो छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर से २७ किलोमीटर दूर चन्द्रखुरी ग्राम में है। चन्द्रखुरी कौशल्याजी की जन्मभूमि और श्रीरामजी का ममहर होने से गौरवान्वित है। कौसल पहले बहुत बड़ा जनपद था, जिसमें दक्षिण कौसल

कौशल्याजी की जन्मभूमि, चन्द्रखुरी, छत्तीसगढ़

वर्तमान छत्तीसगढ़ है। इसी कौसल धरित्री की लाड़ली पुत्री हैं कौशल्याजी। कौसल प्रदेश की राजकुमारी होने के कारण कौशल्या कहलाईं। जलसेन तालाब के बीच में विद्यमान इस मन्दिर की शोभा बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर में माँ कौशल्या और श्रीराम के बालरूप की प्रतिमा विद्यमान है। मन्दिर परिसर में यज्ञ-मण्डप और अन्यान्य मूर्तियाँ भी हैं। तालाब के प्रस्तर घाट बड़े अच्छे हैं। तालाब के पास बहुत भव्य प्रवेश-द्वार और दर्शनीय श्रीराम की विशाल मूर्ति है। इसी भव्यता के कारण यह छत्तीसगढ़ के पर्यटन-स्थलों में से एक है।

माता कौशल्या की उदात्तता और विवेकशीलता

कौशल्याजी के विवेक और उदार व्यक्तित्व का परिचय श्रीरामचरित-मानस में तब मिलता है, जब श्रीराम अचानक अपने वन-गमन की बात उनसे कहते हैं –

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।। २/५२/६

माँ, पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ मेरा बहुत बड़ा काम है। इतना कहकर रुके नहीं, कहते हैं –

आयसु देहि मुदित मन माता।
जेहि मुद मंगल कानन जाता।। २/५२/७

माँ, तू प्रसन्नता से मुझे आज्ञा दो, जिससे वन-यात्रा में आनन्द-मंगल हो।

यदि किसी माता को यह कहा गया हो कि कल तुम्हारे पुत्र का राज्याभिषेक होगा और हठात् उसे अपने पुत्र का वनवास सुनने को मिले, तो उसके हृदय की पीड़ा और प्रतिक्रिया की हम कल्पना कर सकते हैं। लेकिन यहीं पर कौशल्याजी के महान चरित्र का दिग्दर्शन होता है। स्नेहवश दुख तो होता है। लेकिन वे सारी घटना सुनने के बाद कहती हैं –

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु।। २/५५

राज देना कहकर वन दे दिया, इसका मुझे तनिक भी क्लेश नहीं है। किन्तु तुम्हारे बिना भरत, महाराज और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा, यह सोचकर मुझे दुख हो रहा है।

वन में भी कौशल्याजी ने सुनयनाजी से कहा था कि श्रीराम-लक्ष्मण और सीता वन में जाएँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं, मुझे तो भरत की चिन्ता है –

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु।।

माँ कौशल्या यहाँ अपने एकमात्र पुत्र के स्नेह को भूलकर भरत, राजा और प्रजा के भावी दुख से दुखित हो रही हैं, उनकी यही भावना उन्हें अन्य माताओं से पृथक् उत्तमोत्तम

मातृश्रेणी में प्रतिष्ठित करती है।

पातिव्रत-धर्म और पुत्र-स्नेहजनित द्वन्द्व की अग्नि-परीक्षा में माँ कौशल्याजी का विवेक तो देखिये। जब पातिव्रत-धर्म और पुत्र-स्नेह के बीच उनके मन में द्वन्द्व होने लगा, तो अपने प्रबल विवेक से वे पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं और दुस्त्याज्य पुत्र-स्नेह का इस प्रकार समाधान करती हैं। वे सोचती हैं –

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू।
धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू।।
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी।
संकट सोच बिबस भइ रानी।। २/५४/४-५

यदि मैं स्नेहवश हठ कर पुत्र को वन-गमन से रोकती हूँ, तो धर्म जाता है और भाई से विरोध होगा। यदि वन जाने को कहती हूँ, तो पुत्र से वंचित हो रही हूँ, जब ऐसा द्वन्द्व उनके मन में आता है, तब वे '**रामु भरतु दोउ सुत सम जानी**' – राम-भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर वन-गमन की आज्ञा देते हुए कहती हैं –

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका।
पितु आयसु सब धरमक टीका।। २/५४/८

पुत्र ! तुमने बड़ा अच्छा किया, पिता की आज्ञा का पालन करना ही सभी धर्मों का शिरोमणि धर्म है।

यहाँ हमें माता कौशल्या के उदार हृदय और प्रचण्ड प्रखर विवेकशीलता दृष्टिगोचर होती है, जिससे वे पातिव्रत-धर्म और पुत्र-स्नेह के द्वन्द्व की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होती हैं।

ईश्वर की आज्ञा और विधाता का प्रपंच

माता कौशल्या के महान व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष का दर्शन तब होता है, जब वे अन्य महारानियों, गुरुदेव और अयोध्यावासियों के साथ श्रीराम-लखन-सीता से मिलने वन जाती हैं। बाद में जनकजी भी सुनयनाजी के साथ आते हैं। वहाँ एक दिन सीताजी की माता सुनयनाजी और कौशल्याजी के बीच चर्चा हो रही थी। बेटी-दामाद की ऐसा दशा देखकर सुनयनाजी का दुखित होना स्वाभाविक है। वे कहती हैं – **सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी** – विधाता की बुद्धि बड़ी टेंढ़ी है। वह निर्दोष लोगों पर वज्रपात कर रहा है। आगे कहती हैं – **सुनिय सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल। (२/२८१)** अमृत सुनते हैं, लेकिन विष देखते हैं, विधाता के सभी कार्य भयंकर हैं ! उनकी बात सुनने के बाद सुमित्राजी ने कहा –

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा।
बिधि गति बड़ी बिपरीत बिचित्रा।।
जो सृजि पालई हरइ बहोरी।
बालकेलि सम बिधि मति भोरी।। २/२८१/१-२

– विधाता की चाल बड़ी उलटी और विचित्र है, जो सृष्टि करके पालता और पुनः नष्ट कर देता है। विधाता की बुद्धि बाल-क्रीड़ा के समान विवेकहीन है।

इसके बाद कौशल्याजी ने जो बात कही, इससे उनके धैर्य, परिपक्वता और ईश्वरपरायणता की स्पष्ट झलक मिलती है। वे कहती हैं –

कौसल्या कह दोसु न काहू।
करम बिबस दुख सुख छति लाहू।।
कठिन करम गति जान बिधाता।
जो सुभ असुभ सकल फल दाता।।२/२८१/३-४

– इसमें किसी का दोष नहीं है। सुख-दुख, हानि-लाभ सब कर्म के अधीन है। कर्म की कठिन गति को शुभ-अशुभ के फलदाता विधाता ही जानते हैं।

ईस रजाइ सीस सबही कें।
उतपति थिति लय बिषहु अमी कें।।
देबि मोह बस सोचिअ बादी।
बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी।।२/२८१/५-६

– ईश्वर-आज्ञा सबके शीश पर है, सर्वोपरि है। सृष्टि-पालन-संहार, अमृत और विष के सिर पर भी है। अतः हे देवि ! चिन्ता करना व्यर्थ है, विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल-अनादि है। इसके बाद कौशल्याजी कहती हैं कि महाराज के जीवन-मरण को हृदय में याद कर चिन्ता करती हैं, वह तो स्वार्थवश अपने हित की हानि को देखकर करती हैं। यहाँ हमें माता कौशल्याजी के तीसरे पक्ष का दर्शन होता है, जिसमें उनमें एक ज्ञानी की भाँति विचार-शक्ति, भक्त सदृश ईश्वर-निष्ठा और विधाता की स्वीकृति है।

वन से आने के बाद जब भगवान के सखा बानर-भालुओं ने माता कौसल्याजी को प्रणाम किया, तब उन्होंने आशीर्वाद दिया – **कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।**
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ।।

सबको अपने प्रिय पुत्र राम के समान हृदय में स्थान देनेवाली विराटचेता माता कौशल्याजी को इन्हीं सद्गुणों के कारण ही तो आज भी लोक में माताएँ गाती हैं कि कौशल्याजी जैसी माँ और सासु मिलें। ○○○

स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी

विनायक लोहानी

संस्थापक, परिवार संस्था, पश्चिम बंगाल

अनुवाद : स्वामी उरुक्रमानन्द

प्रारम्भिक जीवन

भूपेन्द्रनाथ दत्त का जन्म ४ सितम्बर, १८८० ई. में कोलकाता में हुआ था। उनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कोलकाता उच्च न्यायालय में एटर्नी थे। वे अपने सहोदरों– तीन भाई एवं चार बहनों में सबसे कनिष्ठ थे। इनमें कुछ का शैशवकाल में ही निधन हो चुका था। उन सबमें वरिष्ठ नरेन्द्रनाथ उनसे सत्रह वर्ष बड़े थे, द्वितीय भाई महेन्द्रनाथ इनसे ग्यारह वर्ष बड़े थे। इनका परिवार एक शताब्दी पूर्व उत्तर कोलकाता के सिमुलिया अंचल (अब सिमला) में निर्मित एक बृहत भवन में एक संयुक्त परिवार के अंशस्वरूप रहता था।

जिस काल में, बंगाल में ब्राह्म समाज एवं अन्यान्य समाज सुधार आन्दोलन जोरों पर थे, ऐसे समय में जब बंगाल का शिक्षित वर्ग उपरोक्त भावधारा से काफी प्रभावित था – भूपेन्द्र के पिता भी उदार व्यक्तित्व के धनी थे। वे एक बहुभाषाविद् थे एवं अंग्रेजी और बांग्ला के अलावा संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू के भी ज्ञाता थे। यहाँ तक कि वे थोड़ी अरबी भाषा भी जानते थे। भाषाओं के अतिरिक्त उनकी इतिहास

भूपेन्द्रनाथ दत्त

में भी विशेष रुचि थी एवं उनका ग्रन्थालय कई भाषाओं के साहित्यिक ग्रन्थ-रत्नों एवं इतिहास की विद्वत्तापूर्ण कृतियों से पूर्ण था। उन्होंने बांग्ला भाषा में सुलोचना नामक उपन्यास की रचना की थी, किन्तु अर्थाभाव के कारण उस ग्रन्थ को किसी अन्य व्यक्ति को दिया, जिसने उस ग्रन्थ को अपने नाम पर प्रकाशित करा दिया। उन्होंने बांग्ला तथा हिन्दी में 'शिष्टाचार पद्धति' नामक पुस्तक की भी रचना की थी। वे अपने मित्रों को सन्ध्या के समय अपने निवास पर आमन्त्रित कर उन्हें विशेष रसोइयों द्वारा निर्मित मुगलाई इत्यादि व्यंजनों से तृप्त करते थे। भूपेन्द्र के अनुसार उनके पिताजी के उदार चिन्तन के कारण ही सारी सन्तानें भी मौलिक चिन्तन की अधिकारी हुईं।

परिवार की महिलाएँ धार्मिक परम्पराओं में रची-पची तो थीं ही, इसके अतिरिक्त पर्याप्त सीमा तक आधुनिक शिक्षा से भी अनभिज्ञ न थीं। भूपेन्द्र की दादी ने एक अप्रकाशित उपन्यास की रचना की थी, जिसकी पाण्डुलिपि उत्तर एवं मध्य भारत के प्रवास के समय खो गयी। माता भुवनेश्वरी देवी ने भी बांग्ला भाषा में पद्य-रचना की थी। वे अपने

बच्चों को रामायण, महाभारत एवं पुराणों से कथाएँ सुनाया करती थीं। ये सब कथाएँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। वे अंग्रेजी भी अच्छी जानती थीं एवं अपने बच्चों को अंग्रेजी प्राथमिक ग्रन्थ उन्होंने स्वयं ही पढ़ाए थे। भूपेन्द्र की बड़ी बहनें बेथुन स्कूल एवं मिशन स्कूल में शिक्षित हुईं।

उनके अग्रज नरेन्द्रनाथ एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व के रूप में परिणत हुए। उन्होंने कुश्ती अखाड़ों में सीखी थी, उच्चांग शास्त्रीय संगीत की शिक्षा उस्तादों से प्राप्त की थी, कई यन्त्रों को वे सहजता से बजाते थे और उनका एक सहज-सहल आत्मविश्वास था, जो लोगों को कभी-

भूपेन्द्रनाथ दत्त का जन्म स्थान सिमला, कोलकाता

कभी दाम्भिकता की तरह प्रतीत होता था। उनकी बौद्धिक अभिरुचियाँ अपने पाठ्यक्रमों के परे चली जाती थीं और उनका उस समय के प्रमुख दार्शनिक हर्बट स्पेन्सर के साथ पत्राचार होता था। वे स्पेन्सर के विकासवाद के सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने अपने कॉलेज के समय स्पेन्सर के On Education पुस्तक का बांग्ला अनुवाद किया था। प्रथमत: उन्होंने प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया था, परन्तु अस्वस्थता के कारण उपस्थिति कम होने से उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा था। उसके कारण उन्हें परीक्षा में बैठने नहीं दिया गया। इसीलिए वे जनरल असेम्बलीस इन्सटिट्युट (अब स्कॉटिश चर्च कॉलेज) में भरती हुए। सन् १८८३ ई. में विश्वविद्यालय के स्नातक होने के पश्चात् उनके पिताजी ने नरेन्द्रनाथ को एक एटर्नी एट लॉ की फर्म में प्रशिक्षण हेतु भेजवाया जिससे भविष्य में उन्हें एटर्नी के क्षेत्र में आगे बढ़ने में सहायता मिल सके। उनके पिताजी की एक परिकल्पना यह भी थी कि वे विलायत जाकर कानून की शिक्षा में अग्रसर हों। उन्हें पिताजी ने Free Masoned नामक संस्था का मेम्बर बनवाया, ताकि भविष्य में यह उनका सहायक सिद्ध होगा।

परन्तु दो घटनाओं ने परिवार का सारा भाग्य ही बदल दिया। उनमें से प्रथम तो नरेन्द्रनाथ का श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास १८८१ से लगातार आना-जाना, जिसने भविष्य में उनका सारा जीवन ही बदल दिया तथा द्वितीय १८८४ ई. में श्री विश्वनाथ दत्त का निधन। विश्वनाथ दत्त की मृत्यु के पश्चात् उनके सम्बन्धियों ने भुवनेश्वरी देवी को उनके सारे वैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया और असहाय परिस्थितियों में उन्हें बच्चों सहित अपने पिता के घर (७, रामतनु बसु लेन) जाकर रहना पड़ा। नरेन्द्रनाथ ने दो वर्षों तक अपने परिवार का भरण-पोषण किया, परन्तु श्रीरामकृष्ण का शिष्यत्व प्राप्त होने के बाद उनके मन की ही व्याकुलता ने उन्हें अपने परिवार से सम्बन्ध तोड़कर संन्यस्त जीवन को व्यतीत करने हेतु प्रेरित किया।

भूपेन्द्रनाथ ने एक स्थान पर कहीं कहा था, 'हमारे जीवन के उस अन्धकारमय समय में हमारी नानी हमलोगों की संरक्षक थीं। उन्होंने ही हमारी देखभाल की एवं हम १९०३ ई. तक उनके पास ही रहे।'

भूपेन्द्रनाथ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन इन्सटिट्युट में अध्ययन रत थे, जहाँ पर स्वयं नरेन्द्रनाथ ने अध्ययन एवं अध्यापन दोनों ही किया था। भूपेन्द्र ब्राह्मनेता शिवनाथ शास्त्री के समाज सुधारवादी उपक्रम से अत्यन्त प्रभावित थे। भूपेन्द्र यह भी याद करते थे कि उनके बाल्यकाल का वातावरण धार्मिक समरसता से ओत-प्रोत था। बालक के रूप में वे मुहर्रम में भी सम्मिलित होते थे और मुसलमान भाइयों के साथ लाठी-खेल खेलते थे। वे नगर में घूमते हुए फकीरों को दरगाहों के लिए दान-दक्षिणा भी देते थे।

जब भूपेन्द्र अपनी किशारोवस्था में थे, तब उनके अग्रज (अब विख्यात स्वामी विवेकानन्द) ने पहले पाश्चात्य में और फिर भारत में एक हलचल-सी मचा दी। स्वामीजी ने इसी दौरान गंगा के पश्चिमी तट पर रामकृष्ण संघ के मुख्य केन्द्र बेलूड़ मठ की स्थापना की थी। विवेकानन्द व्यक्तिगत वार्तालाप में घनिष्ठ मित्रों एवं अनुरागियों को कहा करते थे कि उनकी यह इच्छा है कि वे अपनी माँ, नानी एवं भाइयों के साथ एक छोटे-से घर में बाकी जीवन बिता देंगे। पर परिवार को एक बड़ा ही वज्राघात तब लगा, जब १९०२ ई. में स्वामीजी ने इस धरा से महाप्रयाण किया। भूपेन ने

इस घटना का विवरण इस प्रकार दिया है : ''स्वामीजी के व्यक्तिगत सेवक नाडू एक दिन सुबह-सुबह स्वामीजी के महाप्रयाण का समाचार लाए। लेखक ने दुख भरा समाचार अपनी माँ और नानी को दिया। माँ ने इस अकस्मात् घटना का कारण पूछा। मैंने उत्तर दिया जैसा पिताजी को हुआ था। वे इस दारुण घटना से अत्यन्त व्यथित होकर फूट-फूटकर रोने लगीं। पड़ोस से एक महिला आकर उन्हें सान्त्वना देने लगी। नाडू ने मुझे सिमला स्ट्रीट के मित्र परिवार को भी यह समाचार देने को कहा। उसके बाद मैं अपनी बहन के घर गया और वहाँ मेरे जीजाजी को पहले से ही सूचना मिल चुकी थी। हम दोनों बेलूड़ मठ के लिए निकले। वहाँ पहुँचकर हमने मठ के साधुगण अतुलचन्द्र घोष और भगिनी निवेदिता को देखा। कुछ देर में माँ वहाँ अपने सबसे बड़े नाती के साथ पहुँची। वे जोर से रोने लगीं और अन्त में साधुओं ने उन्हें घर भेजने के लिए कहा और मुझे साथ ले जाने के लिये कहा। पर उन्हें अपने नाती के साथ भिजवा दिया गया। निवेदिता ने माँ को रोते-रोते बिदाई दी। जब चिता को अग्नि दी गयी, तभी वहाँ नाट्यकार श्री गिरीशचन्द्र घोष पहुँचे। स्वामी निरंजनानन्द ने गिरीशबाबू को बड़े ही मर्मान्तक स्वर में कहा, 'नरेन चला गया।' गिरीशचन्द्र ने उत्तर दिया, 'चला नहीं गया, केवल शरीर ही छोड़ा है।'' इसी बीच निरंजनानन्द ने एक ब्रह्मचारी को स्वामीजी के पदचिन्हों को वस्त्र में लेने को कहा। फिर वैसा ही किया गया।''

भूपेन्द्रनाथ की माँ भुवनेश्वरी देवी

भुवनेश्वरी देवी श्रीरामकृष्ण देव के वार्षिकोत्सव हेतु १० रुपये का दान किया करती थीं। स्वामीजी के महाप्रयाण के पश्चात् वे उनके जन्मोत्सव के लिए वही दानराशि देने लगीं। वे जन्माष्टमी के अवसर पर रामचन्द्र दत्त द्वारा संचालित योगोद्यान (जहाँ श्रीरामकृष्ण के भस्मावशेष संरक्षित थे) में भी दान देती थीं। भुवनेश्वरी देवी के निधन के बाद स्वामीजी की बहन स्वर्णमयी देवी ने भी इसको जारी रखा, जब तक श्रीरामकृष्ण देव के पार्षदगण जीवित थे।

भूपेन्द्र के द्वितीय भ्राता श्री महेन्द्रनाथ भी बड़े अद्भुत व्यक्ति थे। सन् १८९६ ई. में महेन्द्रनाथ स्वामीजी की उपस्थिति में लन्दन गये थे। वे दुस्साहसी प्रवृत्ति के थे एवं जल्द ही पहले फ्रांस, गिबराल्टर होते हुए मोरक्को चले गये। वे लम्बी दूरियाँ बिना पैसे के पैदल ही पूरी कर लेते थे। अगले कुछ साल वे त्रिपोली, एलेक्सेण्ड्रिया, कायरो, डेमस्कस, जेरुसेलम, सोफिया, कॉन्स्टेण्टिनोपाल गये। वहाँ से फिर उन्होंने कॉकेशियन पर्वत शृंग को पार किया और कैस्पियन सागर पार कर अजरबेजान में बाकू तक गये। तत्पश्चात् उन्होंने टिग्रिस यूफ्रिटिस की घाटियों में भ्रमण किया और फिर बगदाद, बसरा, तेहरान, इस्फाहान, कराची और काश्मीर गये। स्वामीजी के महाप्रयाण के छः वर्षों के बाद वे कोलकाता लौटे। स्वामी विवेकानन्द, जो कि संन्यासी हो गये थे, के अलावा बाकी दोनों बन्धु भी आजीवन अविवाहित ही रहे।

बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन में भूपेन्द्रनाथ

बीसवीं शतान्दी के प्रारम्भ से बंगाल क्रान्तिकारी क्रिया-कलापों से उद्वेलित हो रहा था। उन दिनों अनुशीलन समिति क्रान्तिकारी विचारधारा रखनेवाले नवयुवकों के एक संघ के रूप में उभर कर आई थी। इसके प्रतिष्ठाताओं में प्रमथ मित्र और सतीशचन्द्र बसु एवं मार्गदर्शकों में श्रीअरविन्द घोष (जो कि उस समय बड़ोदा में थे), भगिनी निवेदिता, सरलादेवी (रवीन्द्रनाथ टेगौर की भाँजी), सुरेन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के भतीजे) थे। बंकिमचन्द्र और कुछ सीमा तक राजनारायण बसु एवं नवगोपाल मित्र के भावों ने १९वीं शताब्दी में राष्ट्रवाद की एक बौद्धिक एवं अनुप्रेरणामूलक नींव तैयार कर दी थी। स्वामी विवेकानन्द जी की विदेश में दी गई वक्तृताओं ने भारतीय मानस को भारतीय दर्शन एवं आध्यात्मिक परम्पराओं के प्रति उद्बुद्ध किया। विवेकानन्द का देश के पुनर्जागरण के लिए देशवासियों का आह्वान और उनके द्वारा चलाए गए दीन-दुखियों हेतु सेवाकार्यों ने सुप्त भारतीय मानस में एक महौषधि के रूप में कार्य किया। सन् १९०२ ई. में स्वामीजी के महाप्रयाण के पश्चात् उनकी आयरिश शिष्या भगिनी निवेदिता और अरविन्द ने

राष्ट्रवाद के भाव को तीव्र किया। उन्होंने देशवासियों को सारे विश्व के प्रधान क्रान्तिकारी उपक्रमों से जैसे इटली के मैजिनी और गैरिवाल्डी, आयरलैण्ड के सीनफीन और कुछ सीमा तक रूसी क्रान्तिकारी एवं अराजकतावादी जैसे क्रोपाटिकिन (Pyotr Alexeyevich Kropotkin) से अवगत कराया। भगिनी निवेदिता ने अपनी १५० पुस्तकों को अनुशीलन समिति के केन्द्रों को प्रदान किया। वे सतीशचन्द्र मुखर्जी द्वारा स्थापित डॉन सोसायटी में (जहाँ भूपेन्द्र जैसे क्रान्तिकारी मानसिकता वाले बहुत से युवक आते थे) – भगिनी निवेदिता वक्तृता देती थीं। टाउन हॉल में दी गयी भगिनी निवेदिता की वक्तृता Dynamic Religion भूपेन्द्र को विशेष रूप से स्मरण रही। यह वक्तृता इतनी प्राणोद्वेलक थी कि विपिन चन्द्र पाल ने अन्त में कहा कि यह न केवल Dynamic (शक्तिशाली) थी, बल्कि एक Dynamite (प्रध्वंशक) थी। मैजिनी की आत्मकथा के प्रथम छः खण्डों की बहुत-सी प्रतिलिपियाँ बनाकर सारे बंगाल की क्रान्तिकारी संगठनों में बाँटी गयीं। १९०४-५ ई. में विश्व पटल पर घटी घटना ने जैसे रूस पर जापान की विजय ने बंगाल के नवयुवकों के मानस को विशेष रूप से अनुप्रेरित किया।

भगिनी निवेदिता

भूपेन्द्र ने बाद में अपने संस्मरणों में लिखा था, ''ये एक मानी हुई बात थी कि स्वामीजी का युवा देशवासियों के प्रति आह्वान एवं आगामी प्रजन्मों में क्रान्तिकारी भाव की तीव्रता में एक घनिष्ठ सम्बन्ध था। Mazini एवं Garibaldi की रचनाओं के साथ-साथ स्वामीजी की रचनाएँ भारतीय युवाओं की अनुप्रेरणा की प्रधान स्रोत थीं। क्रान्तिकारी संगठनों के अखाड़ों में उनका ग्रन्थ 'Lectures form Columbo to Almora' पढ़ा जाता था। 'गीता की तुलना में फुटबाल से तुम ईश्वर के अधिक समीप पहुँचोगे। हमें बलिष्ठ बाहुवाले लोग चाहिए' – स्वामीजी की इस उक्ति से युवा विशेष रूप से प्रेरित हुए।'' इस सन्दर्भ में भूपेन्द्र ने फ्रांसिसी साहित्यिक एवं नोबल पुरस्कार विजेता रोमाँ रोलाँ को उद्धृत करते हुए कहा, ''भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन काफी समय तक सुलगता रहा और जब अन्त में विवेकानन्द की साँसों ने इस राख को अंगारों में परिणत किया, तो उनके प्रयाण के तीन वर्ष बाद १९०५ में वह आग जोरों से धधक उठी।'' यह विस्फोट स्वदेशी आन्दोलन का था, जो कि लॉर्ड कर्जन द्वारा किये गये बंग-भंग की प्रतिक्रिया स्वरूप था एवं भूपेन्द्र इस बवण्डर में फँस गये। भूपेन्द्र तब के बौद्धिक वातावरण का वर्णन करते हुए कहते हैं : ''के. जोगेन्द्र विद्याभूषण द्वारा किए गये बांगला अनुवाद एवं बंकिम के आनन्द मठ ने बंगाली मानस को प्रज्वलित कर दिया। हममें से और अधिक बौद्धिक रूप से उन्नत व्यक्ति यूरोपीय राजनैतिक चिन्तन समाजवाद एवं रूसी क्रान्तिकारियों की क्रियाकलापों का पठन करते थे।'' युवकों के लिए महाराष्ट्रीय विद्वान एवं क्रान्तिकारी श्री सखाराम देउस्कर जो लम्बे समय से बंगाल में ही रह रहे थे, वे कक्षाएँ लेते थे। उनकी एक बांग्ला पुस्तक 'देशेर कथा' क्रान्तिकारी मानसिकता वाले युवकों में बहुत ही लोकप्रिय हुई थी। देउस्कर इन युवकों को राजनीति, अर्थशास्त्र एवं विश्व की समकालीन बौद्धिक भावराशि से अवगत करवाते थे। वे अपने छात्रों को कोलकाता की इम्पिरीयल लाइब्रेरी से समाजवाद के ग्रन्थ पढ़ने को कहते थे। ग्रन्थालय-प्रधान के हतोत्साहित करने के बावजूद भी भूपेन्द्रनाथ ने ब्रिटिश सोशियल डेमोक्रेटिक के अग्रिम सदस्य हाइण्डमेन की पुस्तक वहाँ से ली। तत्कालीन शिक्षित वर्ग भारत के आर्थिक शोषण के विषय में आर. सी.दत्त, विलियम डिगबिग के ग्रन्थों से अवगत हुए। इन सब ग्रन्थों के सारगर्भित भावों को देउस्कर की 'देशेर कथा' नामक पुस्तक में भी पाया।

युगान्तर पत्रिका

उस समय अनुशीलन समिति कोलकाता में अखाड़े चलाती, श्रमिकों के लिए रात्रि विद्यालय एवं प्राकृतिक आपदाओं के समय त्राणकार्य किया करती थी। इस दौरान ही समिति के अधिक दुस्साहसी सदस्य जो ब्रिटिश तन्त्र पर सीधा आक्रमण करना चाहते थे, उनका समूह युगान्तर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह नाम १९०६ ई. में आरम्भ किये गये युगान्तर नामक पत्रिका से आया। इस संगठन के प्रमुख सदस्य श्री अरविन्द घोष के अनुज बारीन्द्र घोष थे। बारीन्द्र ने

उत्तर कोलकाता में माणिकतला में अपने पारिवारिक उद्यानगृह में एक क्रान्तिकारी अड्डे के रूप में इसे आरम्भ किया, जहाँ क्रान्तिकारी पद्धति से प्रशिक्षण, अस्त्र एवं बम-निर्माण का प्रशिक्षण इत्यादि दिया जाता था। अरविन्द घोष की 'भवानी मन्दिर' योजना, जो देश को स्वतन्त्र करने के लिए व्रती, त्यागी नवयुवकों के केन्द्र के रूप में परिकल्पित थी, उसका यह एक कच्चा प्रारूप था। युगान्तर नाम ब्राह्म प्रचारक शिवनाथ शास्त्री के एक सामाजिक उपन्यास से लिया गया था। यह नाम भूपेन्द्र ने प्रस्तावित किया, जिसे अन्य लोगों ने स्वीकार किया। पत्रिका का आदर्श वाक्य था – 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो', जिसमें स्वामी विवेकानन्द की छाप स्पष्ट थी। भूपेन्द्र ने इस पत्रिका के सम्पादन एवं संचालन में विशेष भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर, प्रत्यक्ष रूप से क्रान्तिकारी गतिविधियाँ जैसे हिंसक अभियान, बम-निर्माण, सदस्यों की भर्ती एवं प्रशिक्षण एवं अर्थ-संग्रह हेतु डकैतियाँ (जिन्हें स्वदेशी डकैती कहा जाता था), ये सब कार्य बारीन्द्र एवं उनके अन्य साथीगण माणिकतला उद्यानगृह से देखते थे। माणिकतला के सदस्यों में धार्मिक प्रवणता विशेषरूप से थी, किन्तु सभी क्रान्तिकारियों का दृष्टिकोण वैसा नहीं था। हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों को आधार मानकर प्रतिज्ञा न लेने की एक रीति चली थी। कुछ लोगों को यह रीति गैर-हिन्दुओं को आन्दोलन से जोड़ने में प्रतिरोधक लग रही थी। अपनी प्रतिज्ञा के समय भूपेन्द्र ने अलग-अलग धार्मिक ग्रन्थों को मँगवाया था।

'युगान्तर' अंग्रेज शासन के विरुद्ध हल्के-फुल्के विरोध को अपर्याप्त मानता था और कड़े कदमों की माँग करता था। पत्रिका में सामाजिक और आर्थिक महत्त्व के लेख भी छपते थे। अरविन्द घोष ने इसमें कई लेख लिखे, जिनमें बहुत ऊँचे बौद्धिक एवं अनुप्रेरणात्मक तत्त्व होते थे। युगान्तर ने शोषणकारी औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने के लिये जोरदार आह्वान किया – ''पाठक यह सोचते होंगे कि वे दुर्बल हैं और सर्वशक्तिमान अंग्रेजों से लड़ने की उनकी शक्ति नहीं है। उत्तर है कि भय मत करो। इटली ने गुलामी के दाग को अपने रक्त से पोंछ डाला। क्या अपने देश को अपमान और दासत्व से मुक्त कराने के लिये, अपने जीवन का बलिदान देने के लिये तत्पर बंगाल के एक हजार नवयुवक आगे नहीं आएँगे?''

हिंस्र उत्थान का सुर किंचित ही छिपा था – ''रक्तपात के बिना देवी की पूजा नहीं हो सकेगी। हर जिले में अंग्रेज अधिकारियों की संख्या है ही कितनी? दृढ़ निश्चय से तुम अंग्रेज शासन को एक ही दिन में समाप्त कर सकते हो।'' युगान्तर का विक्रय कुछ एक सौ प्रतियों से बीस हजार प्रतियों तक चला गया है। कुछ और पत्रिकाएँ थीं, जैसे विपिनचन्द्र पाल और बाद में अरविन्द द्वारा सम्पादित अंग्रेजी पत्रिका 'वन्दे मातरम्' एवं ब्रह्मबान्धव उपाध्याय सम्पादित पत्रिका 'संध्या'। सरकार ने इन पत्रिकाओं को कड़ी चेतावनी दी। भूपेन्द्रनाथ आदि ने इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया, इसीलिए ५ जुलाई, १९०७ को उन्हें हिरासत में ले लिया गया। भूपेन्द्र पर शासन-विरोधी सम्पादकीय एवं लेख लिखना आरोप था, विशेषत: उनके दो लेख – 'भय भांगा' और 'लट्ठ औषधी' को अत्यन्त भड़काऊ घोषित कर दिया गया। भूपेन्द्र की गिरफ्तारी के अगले दिन अरविन्द ने Bande Mataram में 'Wanted more repression' नाम का एक लेख लिखा। इसमें उनका विचार था कि ऐसे दमनकारी कदम राष्ट्रीय जागरण को तेज ही करेंगे।

अपने ऊपर मुकदमें के समय भूपेन्द्र ने अदालत में कहा, 'इन सब लेखों के लिए मैं ही स्वयं उत्तरदायी हूँ। मैंने वही किया, जो मैंने सच्ची श्रद्धा से अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य समझा। मैं नहीं चाहता कि अभियोगी पक्ष व्यर्थ ही असुविधा में पड़े और खर्चा करके यह प्रमाण करे, जो मैं स्वयं नकार नहीं रहा हूँ। मैं दूसरा कोई विचार नहीं देना चाहता और न ही इस मामले में आगे भाग लेना चाहता हूँ।'

कई समाचार पत्रों ने लिखा कि भूपेन्द्र का कदम सारे देश में अभूतपर्व एवं ब्रिटिश शासन में अदालतों से असहयोग का पहला ही नमूना था। ब्राह्मबान्धव उपाध्याय ने 'संध्या' पत्रिका में २२ जुलाई को लिखा कि इस तरह का मुकदमा सारे देश में अग्नि-संचार कर देगा।

अदालत ने उन्हें २४ जुलाई, १९०७ को एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। फैसले के दोपहर के दिन कोलकाता के प्रसिद्ध कॉलेड स्क्वेयर में जनसभा बुलाई गयी, जिसमें भूपेन्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। अपनी अतुलनीय शैली में अरविन्द घोष ने लिखा, 'पहली बार एक ऐसा व्यक्ति पाया गया, जो विदेशी साम्राज्यवाद की शक्ति को यह कह सका, ''तुम्हारे सारे साम्राज्य, आधिपत्य और प्रताप का दिखावा, तुम्हारी अपराजेयता और अप्रतिरोध्य प्रभुता का आडम्बर, तुम्हारे सारे लोकबल व अर्थबल, तोप

बन्दूकों की सम्पत्ति, तुम्हारी कानून और तलवारकी शक्ति, तुम्हारी सारी बन्दी करने की, शारीरिक यातना देने की या फिर मार ही देने की शक्ति होते हुए भी मेरे लिये मेरी आत्मा के लिए मेरे अन्दर वास्तविक पुरुष के लिए, तुम हो ही नहीं, तुम मात्र एक बीतता हुआ पर्व हो, एक अस्थायी क्रिया हो, एक गुजरती हुई विभ्रान्ति हो और स्थायी वास्तविकता मेरी माँ और मेरी स्वतन्त्रता है।''

इस मुकदमे में न्यायाधीश थे डगलस किंग्सफोर्ड, जो कोलकाता के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट थे। उनके कई कठोर कदम जैसे १५ वर्षीय बालक सुशील सेन को कोड़े लगवाना, इससे क्रान्तिकारियों का उनके प्रति तीव्र घृणा का भाव था। डगलस किंग्सफोर्ड कई हत्या-प्रचेष्टाओं में बचे रहे, जिनमें सबसे विख्यात थी मुजफ्फरपुर बम षड्यन्त्र, जिसमें मुजफ्फरपुर क्लब के बाहर बग्घी पर बम गिराए गये। इसमें कैनेडी परिवार की महिलाओं का निधन हो गया एवं खुदीराम बोस की फाँसी और प्रफुल्ल चाकी ने शहादत की। इस घटना के पश्चात् साल भर लम्बा सनसनीखेज अलीपुर षड्यन्त्र मामला चला, जिसने सारे देश का ध्यान आकर्षित किया।

भूपेन्द्र की सजा के समय भगिनी निवेदिता ने उन्हें पीटर क्रोपॉटिकन के ग्रन्थ 'Career of a revolutionary' and 'In Russian and French Prisons' मैजिनी के लेखों के चार खण्ड भेंट स्वरूप दिये। भूपेन्द्र ने भगिनी निवेदिता को अपनी माँ का ख्याल रखने का अनुरोध किया। उन्होंने बाद में लिखा कि मेरी माँ ने मुझे बताया कि निवेदिता ने उनका पूरा-पूरा ख्याल रखा। उन्होंने भूपेन्द्र की माँ को कहा था, 'भूपेन्द्र ने मुझे आपकी देखभाल करने को कहा है।'

उनके कारावास काल के दौरान करीब २०० महिलाओं ने ६१ हैरिसन रोड, (जो डॉ. नीलरतन सरकार का निवास स्थान था) में एकत्रित होकर भुवनेश्वरी देवी का अभिनन्दन किया एवं उन्हें ऐसे साहसी और आत्मत्यागी बेटे की जननी होने पर बधाई दी। आयोजकों ने चाँदी की तश्तरी पर रखे रेशम के वस्त्र जिसमें अभिनन्दन वाणी लिखी थी, उसे भुवनेश्वरी देवी को भेंट किया। अपने वक्तव्य में भुवनेश्वरी देवी ने कहा, 'भूपेन्द्र का कार्य अभी प्रारम्भ ही हुआ है। मैंने उसे देश की सेवा के लिए अर्पित कर दिया।' भूपेन्द्र के शौर्यपूर्ण कार्यों की प्रशंसा करते हुए एक लम्बी कविता पढ़कर भी सुनाई गयी। भूपेन्द्र बाद में अपनी माता को हास्यपूर्ण शब्दों में कहते थे, 'आपको इतनी प्रतिष्ठा विवेकानन्द की माता होने पर भी नहीं मिली, पर मेरी माता होने पर आपको सार्वजनिक सम्मान मिला।'

भूपेन्द्र ने बाद में कहा, ''ब्रिटिश शासन के साथ असहयोग करने का मेरा उदाहरण भारत में पहला था। जेल में मुझे तेल की घानी में काम करने को दिया था। मेरे साथ घटी यातनाओं को लेकर राष्ट्रीय प्रेस में जोरदार टिप्पणियाँ की गयीं और मुझे भागलपुर जेल भेज दिया गया। पर जैसे ही विख्यात अलीपुर षड्यन्त्र मुकदमा चला, वैसी ही मुझे और अधिक यातनाओं का सामना करना पड़ा।''

सन् १९०८ में आये The Newspapers (Incitement of Offeces) Act के कारण सरकार ने समाचार पत्र-पत्रिकाओं का अत्यन्त दमन किया एवं इसके कारण वर्ष के अन्त तक युगान्तर, वन्दे मातरम् एवं संध्या सभी का प्रकाशन बन्द हो गया। भूपेन्द्र ने अपने बाद के संस्मरणों में स्पष्ट रूप से बताया कि कैसे क्रान्तिकारी आन्दोलनों का वह दौर (१९०१-१९१७) जनसाधारण से विच्छिन्न था। उन्होंने लिखा, 'बंगाल में कई जमींदार और वकील हमारे सदस्य बने। एक बार मैं नदिया के एक गाँव में प्रचार करने के लिए गया। वहाँ एक मुसलमान किसान ने अपनी कष्टकर गाथा का वर्णन किया। उसका वृत्तान्त सुनने के बाद मैंने उससे पूछा, ''क्या तुम्हें पता है कि तुम्हें इतना कष्ट कौन दे रहा है?'' उसने उत्तर दिया, 'जमींदार।' मैंने उसे समझाने हेतु कई बार आवृत्ति की हुई राष्ट्रवादी कड़ी पकड़ी। बेचारे जमींदार जिम्मेदार नहीं हैं, अंग्रेज हैं। किसान ने मेरी ओर अविश्वास से देखा और कुछ देर बाद वहाँ से चला गया। मैं समझ गया एक निरक्षर गरीब किसान कलकत्ते के एक बाबू की बात ग्रहण नहीं करेगा। भूपेन्द्र ने कहा, 'वास्तव में हमें उस समय मालूम ही नहीं था कि क्रान्ति क्या होती है। क्रान्तिकारी सभी मध्यम वर्गीय परिवारों से थे।'

भूपेन्द्र ने किसानों की अव्यक्त क्रान्तिकारी क्षमताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने पूर्व बंग के पाबना जिले के किसानों का दृष्टान्त दिया, जिनके जमींदार के विरूद्ध किये गये आन्दोलन के कारण १८८५ में Bengal Tenancy Act लागू किया गया। भूपेन्द्र के अनुसार तत्कालीन क्रान्तिकारी आन्दोलन में किसानों की क्रान्तिकारी क्षमता का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ। **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (१०)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने किया है। – सं.)

अथ वक्ष्यामि ते कृष्ण यस्मादहं तु रोदिमि।।
किमपि भगवल्लीलां नाहं शक्नोमि वेदितुम्।।२६।।

अनुवाद : हे कृष्ण ! तुम्हें बता रहा हूँ, मैं इसलिए रो रहा हूँ कि भगवान की लीला मैं कुछ भी समझ नहीं सका।।२६।।

तरति विपदो लोको मधुसूदननाम यत्।।
जपन् वै पाण्डवानाञ्च स मधुसूदनः स्वयम्।।२७।।
सारथिः सखिरूपेन सततं वर्तते किल।।
तथापि विपदां तेषामन्तो नास्ति कदाचन।।२८।।

अनुवाद : जिस मधुसूदन नाम का जप करके लोग विपत्तियों से मुक्ति पाते हैं, वही मधुसूदन स्वयं पाण्डवों के सारथि तथा मित्र रूप में सदा-सर्वदा साथ रह रहें हैं, फिर भी इनकी (पाण्डवों की) विपत्तियों का कभी अन्त नहीं है।। २७-२८।।

श्रीमहाराज उवाच

परमहंसदेवस्तु काशीधाम्नः सपार्षदः।
दर्शनसमये साक्षात् स्वामित्रैलङ्गमेकदा।।२९।।
तदानीं गतवान् द्रष्टुं सहैव मथुरेण हि।।
सोऽजिज्ञासत तत्रैव तं स्वामिनं तदा प्रभुः।।३०।।

अनुवाद : श्रीमहाराज कहते हैं – परमहंसदेव सपार्षद मथुरबाबू के साथ काशीधाम के दर्शन-काल में एक दिन स्वयं त्रैलंगस्वामी का दर्शन करने गए थे। तब श्रीठाकुरजी ने उन स्वामीजी से पूछा था।। २९-३०।।

एकश्चेदीश्वरो लोका वदन्ति बहुधा कथम्।।
आसीन्मौनी तदा स्वामी ततः स ऊर्ध्वमङ्गुलिम्।।
ध्यानस्थः सन्निवोत्थाप्य व्याचचक्षे सलक्षणम्।।३१।।
ध्याने कृते सुविज्ञातं स वै स्यादेक एव हि।।
कृते पुनर्विचारे हि बहुरिति मतिर्भवेत्।।३२।।

अनुवाद : 'ईश्वर यदि एक है, तो लोग अनेक क्यों बताते हैं?' त्रैलंगस्वामी मौन थे, इसलिये उन्होंने एक ऊँगली ऊपर की ओर उठाकर ध्यानस्थ होने जैसा संकेत से समझा दिया कि (ईश्वर को) ध्यान करके देखने पर यह समझ में आता है कि वह एक है और विचार करने से अनेक, यह बुद्धि आ जाती है।।३१-३२।।

साकारो यो निराकारो आविर्भूयानुकम्पया।।
स हि साकाररूपेण भक्तान् ददाति दर्शनम्।।३३।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण कहने लगे – जो साकार हुए हैं, वे ही निराकार हैं। वे ही कृपापूर्वक साकार रूप में आविर्भूत होकर भक्तों को दर्शन देते हैं।।३३।।

यथा महासमुद्रोऽयं कूलस्यान्तोऽपि कश्चन।।
नैवास्य विद्यतेऽनन्तो जलराशिर्हि केवलम्।।३४।।
शीतलत्वाद्घनीभूतस्तुषारः क्वापि दृश्यते।
भक्तिहिमेन भक्तस्य साकाररूप दर्शनम्।।३५।।
गलितो हिमराशिः स्यात् रवावभ्युदिते सति।।
तस्मिन् महाम्बुधौ यद्वज्जलं भवति पूर्ववत्।।
साकारः स्यान्निराकारो ज्ञानसूर्योदये तथा।।३६।।
।।ॐ इति श्रीरामकृष्णगीतासु ईश्वरो नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तम्।।

अनुवाद : जैसा यह महासमुद्र, जिसमें अनन्त जलराशि ही मात्र विद्यमान है, इसका कूल-किनारा कुछ भी नहीं है। केवल कहीं-कहीं पर अत्यधिक ठण्ड में जमकर बर्फ हो गया है, ऐसा देखा जाता है। उसी प्रकार, भक्त की भक्ति रूपी हिम से जमकर ईश्वर के साकार रूप का दर्शन होता है। फिर सूर्य उदय होने पर वह साकार रूप बर्फ पिघलकर पानी हो जाता है और साकार निराकार हो जाता है।।३४-३६।।

।।ॐ इति श्रीरामकृष्णगीता में ईश्वर नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।।

जब मन में किसी बात को जानने की इच्छा उठे तो एकान्त स्थान में जाकर आँखों में अश्रु भरकर उनसे प्रार्थना करो। वे तुम्हारे मन की सारी गन्दगी और समस्त दुख को हटा देंगे और तुम्हें सब कुछ समझा देंगे।
– श्रीमाँ सारदा देवी

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७६)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज ! कैन्टीन में प्रतिदिन कितने लोग भोजन करते थे?

महाराज – अनेक लोग। जितने लोग आते थे, उन लोगों के लिए तो दूसरा कोई भोजन करने का स्थान नहीं था, कैन्टीन में ही खाते थे। कैन्टीन वाला क्या करता था कि हम लोग जो संख्या लिखकर देते थे, उसमें हेर-फेर करता था। हम लोग ८ लिखकर देते, तो कैन्टीन के लोग उसके बायें १ लिखकर १८ बनाकर जमा करते। मैंने कैम्प-कमान्डेन्ट साहब को पूछा – क्या किया जाये? उन्होंने कहा – निर्मम होकर बिल निरस्त कीजिये। वैसा एक बार किया भी गया। किन्तु निरस्त करने से वे सब खायेंगे क्या? उसके बाद हमलोग उस अंक को अक्षर में लिखकर देते थे।

– महाराज ! ये जो इतने लोग आये थे, उन लोगों के लिए सरकार ने कुछ नहीं किया?

महाराज – कुछ नहीं किया। हाँ, लेकिन कैन्टीन वालों को हमलोगों के लिखने पर वे लोग रुपये देते थे। एक स्थान पर तो इतने लोगों की व्यवस्था करना सम्भव नहीं था। इसलिए कई स्थानों पर कैन्टीन था।

– अच्छा महाराज ! शरणार्थियों के पुनर्वास की कोई व्यवस्था सरकार ने की थी?

महाराज – उनके पुनर्वास के बारे में तो मैं कुछ नहीं जानता। कोई व्यवस्था हुई थी, ऐसा नहीं लगता। हमलोग वहाँ से भेज देते थे। उसके बाद वे लोग कहाँ जायेंगे, उन्हें भी पता नहीं था।

– महाराज कितने लाख शरणार्थी इस प्रकार वहाँ आये थे?

महाराज – ठीक संख्या तो नहीं बोल सकूँगा। किन्तु लगभग हजार लोग प्रतिदिन आते थे। उनलोगों को ट्रक में बकरी-पशु जैसे भरकर लाते थे। लाकर हमलोगों के शिविर में उतार देते थे।

– इसी प्रकार तो कई मास तक शिविर चला था।

महाराज – हाँ। उसके बाद सुनो – हमारे साधु लोग रुग्ण परिवेश में अस्वस्थ होने लगे। जो लोग बीमार होते थे, उनको जाने के लिए कह दिया। मठ से भी अन्य लोगों को भेज नहीं पाते थे। इस प्रकार अन्त तक हम दो लोग वहाँ थे। मैं और गंगाधर महाराज हमारे एक मित्र थे। हमलोग यथासम्भव करते थे।

– इस राहत कार्य में जिन लोगों ने सेवा की है, उनमें अभी एक मात्र आप ही जीवित हैं।

महाराज – हाँ। अभी भी मैं बचा हूँ।

– ये गंगाधर महाराज क्या अन्त में कामारपुकुर में थे?

महाराज – हाँ। मैं एक घटना कहता हूँ – एक दिन एक छोटी-सी बच्ची खो गयी थी। हमलोगों ने उसे शिविर में बैठकर कुछ खाने को दिया था। सबने कहा, वह अनाथ है। मैंने कहा – वह अनाथ नहीं है। खो गयी है। तत्पश्चात् दोपहर के बाद शाम को एक ने आकर बच्ची को गोद में उठा लिया। जो हो, वह तो अपनी बच्ची को पा गई थी। एक दूसरे ने अपनी माँ को खोजने को कहा। वह अपनी माँ को नहीं खोज सका। वे सब स्मृतियाँ अभी भी अत्यन्त स्पष्ट हैं।

– महाराज, इसके बाद तो पचास वर्ष बीत गया। वर्मा के उन शरणार्थियों से बाद में कभी भेंट हुई थी? उनलोगों में कोई प्रतिक्रिया देखी है आपने?

महाराज – नहीं, पुन: मिलने का अवसर नहीं मिला।

– क्या बर्मा में बहुत गुजराती थे?

महाराज – गुजराती, पंजाबी, दक्षिणी और अन्य भी मिली-जुली जातियाँ थीं। सैनिक थे – गोरखा। वे लोग कहते थे – हमलोगों के साथ ब्रिटिश गवर्नमेंट ने विश्वासघात किया है। हमलोगों की कोई व्यवस्था नहीं की। पैदल चलकर आ रहे हैं। पैदल चलने के लिये कोई सुविधा नहीं की।'' मैंने पहले कहा था – आने के दो मार्ग थे। ह्वाईट रोड में सब व्यवस्था थी। साहब लोग उसी मार्ग से आये थे। ब्लैक रोड में

कोई व्यवस्था नहीं थी। उसी पथ से साधारण लोग आते थे।

– महाराज ! 'आमि सुभाष बोलछि' नामक एक पुस्तक है। उसमें लिखा है – ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने नेताजी के फौज को मारने के लिए जान-बूझकर ऐसी व्यवस्था की थी। नेताजी की फौज ने तब उस समय युद्ध किया था। उन सबका वध करने के लिये ही ऐसी व्यवस्था थी।

महाराज – वध करना? ऐसी बात तो सुना नहीं। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट चाहती थी, ये सभी लोग उस स्थान को छोड़कर चले जायँ। 'पालिसी' – जिसे नीति कहते हैं। जिससे जपानियों को वहाँ कोई सहायता न मिले। बर्मी को छोड़कर शेष सभी लोग उस स्थान को छोड़कर चले आये थे। बर्मियों में किसी-किसी का भारतीयों से सम्बन्ध था, किसी-किसी ने भारतीयों से विवाह किया था। उनमें से कई चले आये और कुछ लोग नहीं आये।

प्रश्न – कच्छ में राहत कार्य हुआ था?

महाराज – हाँ, कच्छ में भूकम्प राहत-कार्य हुआ था।

– क्या आपने उसका संचालन किया था?

महाराज – मैंने आरम्भ किया था। उसके बाद सम्बुद्धानन्द स्वामी ने उसका दायित्व लिया।

– वह कब हुआ था, महाराज?

महाराज – वर्ष, दिनांक याद नहीं है।

– तब आप राजकोट में थे?

महाराज – हाँ, राजकोट में था। १९५० के बाद।

– १९५६ में तो पंजाब में भी राहत-कार्य हुआ था।

महाराज – हाँ, हुआ था। कई दिन चला भी था।

– बहुत-से लोग मरे थे।

महाराज – हाँ, किन्तु अद्‌भुत बात जानते हो क्या थी – जो बच गये थे, वे भी भय से संत्रस्त थे। उनलोगों का विश्वास था कि जो लोग घर-मकान में दबकर मरे हैं, वे भूत हुए हैं। वहाँ से वे सब बोल रहे हैं – निकालो, निकालो। माने हमलोगों को यहाँ से निकालकर बाहर करो।

– एक-दो दिन में ही आपलोग वहाँ गये थे?

महाराज – बहुत कम दिनों में ही गया था। उस समय घर-मकान सब गिरा पड़ा है। लोगों की बड़ी दुर्दशा थी।

– गवर्नमेन्ट आर्मी थी?

महाराज – नहीं।

– तब लोगों की रक्षा किसने की? उनलोगों को वहाँ से निकालना, उनका अन्तिम संस्कार करना।

महाराज – उन लोगों का अन्तिम संस्कार नहीं करना पड़ा। मकान में दब गये, कुछ बाहर थे। रास्ते के किनारे खोदकर उन लोगों की अन्तेष्टि की गयी थी।

– क्या राहत कार्य किये थे महाराज?

महाराज – जैसे प्रारम्भिक राहत-कार्य होता है। उसके बाद घर बनवा देना।

– सुना हूँ, 'रामकृष्ण पल्ली' नामक एक ग्राम बनवाया गया था? अभी भी है क्या?

महाराज – हाँ, है। इसके अतिरिक्त पुनर्वास करने के लिए एक गाँव लिया गया था। वे लोग सभी गुजराती थे। उनलोगों ने कहा – 'नया गाँव में आने पर भी पुराना गाँव नहीं छोड़ेंगे। हमलोगों ने कहा – नहीं, ऐसा नहीं होगा। हमलोगों ने एक गाँव बनाकर मार्ग का निर्माण कर उसमें पुनर्वासित करने की योजना बनाई थी, किन्तु नहीं हुआ।

– उन लोगों का घर बना था?

महाराज – हाँ, बना था। घर बनाने की सामग्री देकर सहायता करना, घर बनाने में सहायता करना, ये सब किया गया था।

– कैसा घर महाराज?

महाराज – जैसे गुजराती घर होता है। मिट्टी का घर, ऊपर टीन की छत। एक गाँव में पत्थर का मकान बनाया था।

– पंडित जवाहरलाल नेहरू इन मकानों का उद्‌घाटन करने आये थे।

महाराज – हाँ। हमलोगों ने एक अस्थायी निवास-स्थान बनाया था। एक कमरा, उसमें एक दरवाजा और एक खिड़की थी। एक लम्बा बैरक के समान था। देखकर उन्होंने कहा – "It is not fit for human habitation" मैंने कहा – "It is not meant for that. Its a temporary shelter. उन्होंने सोचा एक-एक महल बनाकर दिया जायेगा। उनलोगों की तो इस सम्बन्ध में कोई धारणा ही नहीं थी।

– मकान बनाने का रुपया कहाँ से पाये थे?

महाराज – जहाँ से भी पाऊँ –

'भरा हुआ भण्डार हमारा, तुम सबके घर-घर में।'

– सरकार ने कुछ नहीं दिया क्या?

महाराज – हमलोगों ने माँगा नहीं।

– बेलूड़ मठ?

महाराज – अरे ! बेलूड़ मठ में उस समय उतना रुपया कहाँ था? अन्यत्र कहीं सहायता करने की उनलोगों में क्षमता नहीं थी? बाद में जब मैं मठ में राहत कार्य देखता था, तब प्रत्येक राहत-कार्य में मात्र ५०००/- रुपये दिए जाते थे। परन्तु उस समय माधवानन्द जी महाराज ने हमारी बहुत सहायता की थी।

– लोग भेजे थे?

महाराज – हाँ, भेजे थे। उस बर्मा राहत-कार्य के समय। मैं जिसको माँगा था, सबको उन्होंने भेजा था। किन्तु अधिक लोगों को नहीं ले सका। क्योंकि वहाँ मिलिट्री ने निषेध किया था।

– मेदिनीपुर राहत-कार्य तो आपने किया था?

महाराज – हाँ। लेकिन हमारी समस्या क्या थी, जानते हो? उस समय इतनी गाड़ियाँ, सामग्री-सुविधायें ये सब नहीं थीं। पैदल चलकर जाना पड़ता था। कभी-कभी स्वयं ही सामान ढोना पड़ता था। मेदिनीपुर में हमलोगों के राहत-कार्य के कुछ केन्द्र भी थे, जैसे चंडीपुर में।

– मेदिनीपुर राहत-कार्य की कुछ बातें बताईये महाराज।

महाराज – हमलोगों के राहत-कार्य का आरम्भ हुआ मेदिनीपुर में। काँथी में नहीं, चंडीपुर में। उसके बाद बारम्बार हुआ है। मेदिनीपुर से हमलोगों के राहत-कार्य का श्रीगणेश हुआ।

– क्या आपने चंडीपुर में बाढ़-राहत-कार्य किया था?

महाराज – मेदिनीपुर में अधिक बाढ़-राहत-कार्य ही होता था। उसके पहले बाँकुड़ा में अकाल-राहत कार्य हुआ था। सूज्जी महाराज (स्वामी निर्वाणानन्द जी) का वहीं पहला राहत कार्य हुआ था। उसके बाद आरा (पूर्णिया) में कलरा-राहत-कार्य हुआ था। ग्रामवासी कहते थे – एक साधु दो बाबा, जिससे ग्रामवासी लोग बच जायँ। मेरे जाने की बात हुई थी, किन्तु जाना नहीं हुआ। शुद्धानन्द स्वामी ने कहा – ''देखो हमलोग सुई होकर प्रवेश करते हैं, फाल बनकर निकलते हैं। वहाँ जाने से हमलोगों पर बहुत दबाव पड़ जायेगा। क्योंकि जहाँ राहत कार्य करने जाओगे, वहीं एक आश्रम बन जायेगा।'' ऐसा कई स्थान पर हुआ भी है। **(क्रमशः)**

गीता पढ़ने का अधिकारी

घटना उन दिनों की है जब चैतन्यदेव महाप्रभु दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा पर थे। श्रीरंगनाथ मन्दिर में भगवान श्रीरंगम का दर्शन करने गये। वहाँ पर उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीरंगनाथ के मन्दिर में जाकर अतीव भक्तिभावपूर्वक गीता-पाठ करते थे। उनका उच्चारण अशुद्ध था, जिससे लोग तरह-तरह का कटाक्ष करते थे और उनका मजाक उठाते थे। किन्तु वे ब्राह्मण उस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते हुए अपने भाव में तन्मय होकर गद्‌गद् कण्ठ से पाठ किया करते थे। पाठ के समय उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होते देखकर महाप्रभु ने पूछा, ''सुनिए विप्रवर, आपको किस कारण इतना आनन्द होता है?'' ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''मैं मूर्ख हूँ, शब्दों का अर्थ नहीं जानता, तथापि गुरु के आदेश पर शुद्ध-अशुद्ध जैसा भी हो पाता है, गीता पढ़ता हूँ । मैं देखता हूँ कि अर्जुन के रथ में श्यामल सुन्दर कृष्ण बागडोर पकड़कर बैठे हुए हैं और अर्जुन को हितकर उपदेश दे रहे हैं। यही देखते हुए मुझे आनन्द का आवेश हो जाता है।'' ब्राह्मण का उत्तर सुनकर चैतन्यदेव ने बहुत हर्षित होकर कहा, ''गीता पढ़ने का आपका ही अधिकार है, आपने ही गीता का सार समझा है।'' ○○○

श्रीरंगनाथ मन्दिर, त्रिचिरापल्ली, तमिलनाडु

नवरात्रि विशेष

शक्तिपीठेश्वरी सती

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

प्रजापति दक्ष ने अनुपम रूपलावण्यवती सत्यरूपा कनिष्ठ कन्या सती को विवाह योग्य देखकर परम रमणीय स्वयंवर सभा का आयोजन किया। यह कोई नहीं जानता था कि सती सदा महेश्वर को ही पति रूप में वरण करना चाहती थीं। दक्ष ने उस स्वयंवर सभा में शंकर को छोड़कर सभी को निमन्त्रित किया था।

दक्ष कहते हैं – हे पुत्री सती ! अब तुम स्वयं देखकर अपने पति का चयन करो। देव-दानव-मुनिगण, ये सभी यहाँ उपस्थित हैं। हे पुत्री ! तुम त्रिनयना हो। अपने तीनों नेत्र खोलकर देखो –

वत्से सति त्रिनयने योग्यं दृष्ट्वा पतिं वृणु।

पिता का वचन सुनकर सती ने सभा की ओर दृष्टि घुमायी। वे वहाँ महादेव को नहीं देख सकीं। वे सोच रही थीं कि मेरे पिता शिव से द्वेष रखते हैं, तभी यह सभा शिवरहित है। माला पृथ्वी पर फेंककर सती देवी भक्तिपूर्वक कहने लगीं, ''हे देव महेश्वर ! आप सनातन हैं। मैंने भक्ति से यह माला भूमि पर रखकर आपका वरण कर लिया। आप मेरे पति हो जायें। तब दक्ष ने कहा ''हे सती ! तुम मेरी कन्या हो। इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर आदि को छोड़कर श्मशान धूलि ही जिसके वक्षस्थल का आभूषण है, ऐसे पति के आलिंगन की इच्छा करती हो? तुमको तथा तुम्हारे भाग्य को धिक्कार है !'' सती शिव प्राप्ति से आनन्दित हो सदा हर्षपूर्वक भ्रमण करने लगीं।

एक बार महेश्वर सती का दर्शन करने भिक्षुरूप धारण करके दक्षगृह आये। उनके कन्धे पर एक जीर्ण गुदड़ी थी। वायु चलने से उस पर से धूल उड़ती थी। बायें हाथ में एक मिट्टी का पात्र था, जिसमें धूल भरे चावल के कण थे। दाहिने हाथ में एक दीर्घ दण्ड था, वह भी उनकी जीर्ण देह जैसा काँप रहा था। उनका सर्वांग झुर्री से भरा था तथा वृद्धावस्था के कारण मस्तक हिल रहा था। महादेव इस प्रकार वहाँ विचरण कर रहे थे, तभी उन्होंने ७ सखियों से घिरी सती को देखा। तदनन्तर वे उन सखियों के पास आये और सखियों से कहने लगे।

वृद्ध कहता है – तुम लोग कौन हो? सामने जिसे प्रज्वलित स्वर्ण प्रतिमा की तरह देख रहा हूँ, वह सुन्दरी कौन है? यह नगरदेवी की तरह अपनी इच्छा के अनुरूप क्यों भ्रमणरत है?

सखियाँ कहती हैं – हे वृद्ध ! क्या कहूँ। ये प्रजापति दक्ष की कन्या हैं। इनका नाम सती है।

इन्होंने वरमाला द्वारा शम्भु का वरण पतिरूप में किया। अयोग्य पति वरण करने के कारण पिता इनसे विरक्त तथा दुःखी हैं। ये प्रिय कन्या होकर भी पिता की स्नेहदृष्टि से वंचित हो गयीं, तथापि इन्हें एक क्षण के लिए भी दुखी नहीं देखा गया।

वृद्ध कहता है – यह वास्तव में दुःख का विषय है। इसमें संदेह नहीं है। इसने परोक्ष में शिव को पति रूप में शिव को स्वीकार किया है, यह जानकर भी शम्भु इसका स्मरण नहीं करते, यह आश्चर्य है। ऐसा स्त्रीरत्न शिव के लिये दुर्लभ है। साथ ही इस कन्या को भी अभागी ही कहना होगा, जो इसने समस्त देवगण को छोड़ शम्भु का वरण किया ! जो भी हो ! यदि तुम लोग अनुमति प्रदान करो, तब मैं ही शिवरूपी होकर इसे ग्रहण करूँ।

सखियाँ कहती हैं – हे वृद्ध ! तुम मूर्ख हो, अन्यथा ऐसा अकथनीय वाक्य क्यों बोलते? तुम भिक्षुक हो, तुम्हारी इन्द्रियाँ जीर्ण हैं तथा शरीर भी जीर्ण है। जिसने सभी देवगण को त्याग दिया, वह तुमको क्यों ग्रहण करेगी?

नीलकुन्तला नामक सखी ने उसे रोका तथा कहा – ''हे रत्नमुखी ! यह सामान्य वृद्ध नहीं है। ये मुझे शिव लग रहे हैं। मूर्ख इनको पहचान नहीं सकते और देखो, सती एकटक इस वृद्ध का मुख देखती जा रही है। देवताओं का चरित्र कोई नहीं जान सकता। पण्डित भी उनकी माया से मोहित हो जाते हैं –

सखि पश्य सतीमेतां पश्यन्तीं भिक्षुकाननम्।
देव-दुर्लक्ष-चारित्र्यां पण्डितस्तत्र मुह्यति।

रत्नमुखी सखी कहती है – हे नीलकुन्तले ! तुम महामूर्ख हो ! अधिक बक-बक आवश्यक नहीं है। तुम बैल-बुद्धि हो।

तुमने जैसी शिवभक्ति दिखलायी है, उससे तो तुम्हारा बैल होना उचित है। इससे महादेव तुम पर सवार हो भ्रमण करेंगे।

नीलकुन्तला कहती है – ''जो भी हो, इससे अधिक भाग्य की क्या बात है कि मैं शिव-वाहन रहूँगी। सर्वदा शिव तथा शिवा का इच्छानुसार दर्शन पाकर कृतार्थ रहूँगी।''

यह बात कहते-कहते नीलकुन्तला ने वृषरूप धारण किया तथा महादेव तत्क्षण वहाँ आकर उस पर सवार हो गये। तब आकाश से पुष्पवर्षा तथा जयध्वनि होने लगी। दक्षपुरी के सभी नगरवासी 'सती के पति आये हैं' कहते हुए कोलाहल करने लगे।''

इत्युक्त्वा सा वृषो भूता तां समारुरुहे शिवः।
आकाशे च जयध्वानः पुष्पवृष्ट्या सहाभवत्।।

नन्दी कहते हैं – आप साक्षात् दाक्षायणी पति शिव हैं। वृद्धरूप से आप यहाँ आये हैं। हे भगवन ! यह मैं आप द्वारा ही प्रदत्त बुद्धि से जान गया !

नन्दी का यह वचन सुनकर शम्भु ने वृद्ध-वेश त्याग कर अपनी कोटि चन्द्रवत् मूर्तिधारण कर वृष पर आरोहण किया। तदनन्तर भूतभावन महादेव ने ब्राह्मण वेशधारी होकर प्रजापति दक्ष की पुरी के पार्श्वस्थ उद्यान में गमन किया। देखते-देखते सती सात सखियों से घिरी वहाँ पहुँच गयीं। भगवान भूतनाथ सती को सखियों के साथ हास्यालाप करते देखकर वेदमन्त्र-पाठ तथा हरिगुण गायन करने लगे। इधर दाक्षायणी के नेत्रद्वय सखियों से हटकर विप्ररूपी महेश्वर पर एकाग्र हो गये। दाक्षायणी मानो उनको आत्मसमर्पण करने के लिए भूमि पर दण्डवत् पड़कर प्रणाम कर रहीं थीं, तभी आशुतोष ने छद्मवेश छोड़ दिया तथा अपना रूप धारण किया और सती को भूमि से उठाकर वक्ष से लगाकर आकाश में चले गये। इस प्रकार से सतीहरण का संवाद सुनते ही अन्तःपुर में महान कोलाहल व्याप्त हो गया।

कालान्तर में शिवद्वेषी दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञ में उन्होंने देवता, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, पितर, मुनिगण, दैत्य, मनुष्य तथा सर्पों तक को बुलाया। केवल उन्होंने अपनी कन्या सती तथा जामाता शिव को न बुलाकर घोषित किया कि मैंने शिव तथा उनकी पत्नी सती को निमन्त्रित नहीं किया। जो इस यज्ञ में नहीं आयेंगे, आज से उनको यज्ञभाग से बहिष्कृत किया जायेगा।

दक्ष का यह वचन सुनकर सुर-असुर सभी भयभीत होकर उस शिव रहित यज्ञ में आये। इधर दाक्षायणी सती पति के साथ कैलास पर्वत पर रह रही थीं। उन्होंने लोगों से पितृगृह की यज्ञवार्ता को सुना तथा उत्सुक होकर वहाँ जाने की अनुमति हेतु महादेव से कहा – हे प्रभो ! त्रिलोचन देव! आपके श्वसुर दक्ष एक यज्ञ कर रहे हैं। त्रिभुवनवासी सभी उस यज्ञ में गये हैं। यदि आपकी अनुमति हो, तब हम दोनों उस यज्ञ में चलें। वहाँ जाने पर पिता हमारा सम्मान करेंगे तथा मन ही मन वे प्रसन्न होंगे।

महादेव कहते हैं – हे प्रिये ! ऐसे संकल्प को मन में स्थान भी न दो। अनिमन्त्रित यज्ञादि कर्म में जाने को लोग मृत्युवत् मानते हैं – **अनाह्वानस्य गमनं मरणञ्च समं द्वयम्।।** हे देवी ! प्रजापति ने केवल हमारे अपमानार्थ यह यज्ञ आयोजित किया है। तब तुम क्यों वहाँ जाना चाहती हो। जामाता सदा श्वसुर से आदर चाहता है। जामाता को विष्णुतुल्य मानकर आदर करना श्वसुर का कर्तव्य है। जो जामाता को देखकर सम्बोधनादि नहीं करता, उसे दुर्वचन बोलता है, बलपूर्वक नौकर जैसे आदेश देता है, कभी कुछ प्रदान नहीं करता, वात्सल्य प्रदर्शन नहीं करता, वह लोक में निन्दित है तथा उसके सभी धर्म-कर्म व्यर्थ हैं।

सती ने कहा – हे प्रभो ! पिता के यहाँ जाने में निमन्त्रण की क्या आवश्यकता है? इसीलिए पिता ने मुझे नहीं बुलाया तथा आगमन में प्रतीक्षा रत हैं। हे प्रभो ! आज्ञा दीजिए कि मैं वहाँ जाऊँ। पिता मेरा बहुत सम्मान करेंगे और मेरा सम्मान तो आपका भी सम्मान है !

महादेव ने कहा – तुम्हारे पिता वहाँ तुम्हारे सामने ही मेरी निन्दा करने लगेंगे। उसे अपने कानों से सुनकर तुमको असह्य यंत्रणा सहन करनी होगी। अतः वहाँ जाना उचित नहीं है। हे दक्षकन्ये ! तुम सब जानती हो। मेरे कथन का उल्लंघन न करो। हे देवी ! जिसके यहाँ सम्मान न मिले, ऐसे श्रद्धाहीन के यहाँ पूज्य का जाना अनुचित है। अतः तुम्हारा वहाँ जाना कदापि उचित नहीं बोध होता।

सती ने कहा – हे देव ! आपने कहा कि अपने कानों से आपकी निन्दा सुनूँगी, ऐसा कभी नहीं होगा। पूर्व में स्वयंवर काल में आपसे प्रार्थना किया था, ''हे देव ! कभी आपकी निन्दा न सुनूँ। यदि आपकी निन्दा कानों में पड़े, तब तत्क्षण प्राण त्याग करूँ।'' आपने यह प्रार्थना सुनी थी। आप अन्य विचार न करें। आपके परित्याग करने पर

मैं प्राण-त्याग कर दूँगी। शिव कहते हैं – अब तुम्हारी जो इच्छा हो, करो। मैं बाधा नहीं बनूँगा।

तदनन्तर सती दक्षालय में उपस्थित हुईं। वहाँ सती के आने का महान कोलाहल उठा तथा पुरी के बाल-वृद्ध सभी श्यामवर्ण सती को देखने आये। सती ने कहा – हे पिता! मैं आपकी प्रियकन्या सती ही हूँ। आप मुझे क्यों नहीं पहचान रहे हैं? आप प्रजापति तथा मेरे पिता हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

दक्ष कहते हैं – हा बेटी ! हा प्राण के समान ! तुम भूतपति शिव के हाथों में पड़कर इस अवस्था को प्राप्त हो गयी। तुम्हारे शरीर की कान्ति ऐसी श्यामल हो गयी। जो भी हो, अब शिव के यहाँ लौटकर जाना आवश्यक नहीं है। क्योंकि पतिसुख से वंचित कन्या का पितृगृह वास ही उचित है। अब तुम मेरे पास रहो। दुराचारी शिव के यहाँ न जाओ।

सती ने उत्तर दिया – दक्ष ! शान्त हो जाओ। जब स्वयं पर नियन्त्रण नहीं है, तब कोई भी धर्माचरण नहीं कर सकता। मैं पुनः कहती हूँ। शान्त हो जाओ। पापबुद्धि त्यागकर मेरा हितकर वाक्य श्रवण करो। देव महारुद्र के चरणों में प्रणाम करो। मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। मेरे वाक्य की अवहेलना नहीं करो। साधुगण छोटे का भी हितकर सद्वाक्य मानते हैं। जो सत्-असत् जानता है, वही साधु है।

तब प्रजापति दक्ष ने क्रुद्ध होकर कहा – हे दुश्चरित्रे ! शिवप्रिये ! तुम मेरी आँखों के समाने से हट जाओ। जब से तुमने स्वेच्छा से शिव का पतिरूप में वरण किया है, तबसे मैं तुमको मृत हो गयी कन्या मान रहा हूँ।

क्रुद्ध सती ने कहा – पिता, माता, गुरु-बन्धु, पितामह, पत्नी, भ्राता पुत्रादि सभी धर्मस्वरूप होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। तुम अधर्मबुद्धि हो, तब कैसे मेरे पिता होने की इच्छा कर रहे हो? तथा मैं धर्ममति होकर क्यों तुम्हारी कन्या बनी रहूँ? जो तुम्हारी कन्या हैं, उनकी तुम रक्षा करो। आज से मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूँ। मैं भगवान त्रिलोचन की शरण में हूँ। वे शान्त, बन्धु, कृपालु महादेव मेरे पति हैं। वे अद्वेषी, सर्वभूतात्मा, कूटस्थ, जगत्पति हैं। लेकिन तुम अपनी मूर्खता के कारण सदा उनसे वैरभाव रखते हो। हे प्रजापति ! मैं तुम्हारे उपकारार्थ कहती हूँ। जिनका 'शिव' रूपी दो अक्षर का नाम सर्व अमंगल नाशक है, उस महेश्वर रूद्र की उपासना यत्नपूर्वक करो। स्तव आदि से उनको प्रसन्न करो। मेरी वाणी की उपेक्षा मत करो !

दक्ष कहते हैं – तुमने स्तव शब्द कहा है। मैं इसका विपरीत पाठ करता हूँ। वह शिव बोधक होगा। (स्तव का विपरीत होगा वस्त। इसका अर्थ है बकरा। इस प्रकार वस्त का प्रयोग दक्ष ने शिव हेतु करके एक प्रकार से शिव को गाली दी है।)

रोषपूर्ण सती ने घोषणा की – हे मूर्ख ! अधमाचारी! अब शिव निन्दा का परिणाम भोगो ! तुमने जो कहा कि मैं स्तव शब्द का उच्चारण 'वस्त' करता हूँ। तब तुम वस्तमुखी हो जाओ –

रे मूर्ख अधमाचार शिवशून्य यथोचितम्।
फलं प्राप्नुहि यच्चोक्तं स्तवशब्दोऽन्यथा मुखे।।

(तुम्हारा मुख बकरे जैसा हो जाये) तुम्हारे मुख से जो शब्द निकले, वह भी बकरे जैसा हो। इससे भविष्य में कोई शिवनिन्दा न कर सके। आज मैं केवल तुम्हारे नेत्रों से बाहर ही नहीं जा रही हूँ। यह देह तुम्हारे द्वारा उत्पन्न है। मैं इसके बाहर जाती हूँ।

सती का वाक्य समाप्त होते-होते दक्ष प्रजापति का मुख बकरे जैसा हो गया। वे बकरे जैसा मेमियाने का शब्द करने लगे। तदनन्तर जैसे ही सती ने उस सभास्थल का त्याग किया, इन्द्रादि देवताओं के साथ वह सभास्थल कम्पायमान हो उठा। कोई भी सती को रोकने में सक्षम नहीं हो सके! उनकी भृकुटी भीषण थी। किसी में साहस नहीं था, जो उनका मुख देख सके। दक्ष ने प्रकृतिस्थ होकर 'सती' शब्द कहकर पुकारना चाहा, तथापि उनके मुख से बकरे जैसी आवाज ही निकली। पृथ्वी, आकाश सर्वत्र 'सती' शब्द को छोड़ कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था। शिवप्रिया सती ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया था। वे हिमालय के दुर्गम वन में जाकर वहाँ दक्ष से उत्पन्न देह त्यागने के लिए उद्यत हो गयीं।

देवर्षि नारद सती के देह-परित्याग का समाचार देने के लिये महादेव के पास पहुँचे तथा कहने लगे – "हे देवदेव, त्रिलोचन ! आपको प्रणाम। देवी सती ने दक्षालय में देहत्याग किया है। प्रजापति दक्ष ने सती के समक्ष आपकी अनेक निन्दा की थी। यह सुनकर भगवती ने दक्ष को क्रोधपूर्वक शाप देकर दक्ष से उत्पन्न अपनी देह का त्याग किया। शिव ने नारद के मुख से यह सुनकर कुछ क्षण विलाप करके शोकविह्वल हो नारद से कहा – वत्स नारद ! सती ने देह-त्याग करके व्याकुल चित्त से मेरा भी त्याग किया। अब मेरे लिये क्या करना उचित है?

नारद ने कहा – अब जहाँ सती ने देहत्याग किया, प्रजापति के उस भवन में आप जायें तथा प्रजापति के सम्बन्ध में सब पता करें। सम्प्रति वे बकरे का मुख पाकर कैसे कार्य कर रहे हैं तथा सती के देहत्याग का समाचार सत्य है अथवा नहीं, यह ज्ञात करना आवश्यक है।

शिव कहते हैं – मैं अभी वहाँ जा रहा हूँ। तब देवाधिदेव शिव ने मन ही मन निश्चय किया तथा भीषणाकृति महारुद्ररूप धारण किया। वे दक्षशाला के बाहर उच्च स्वर से कहने लगे – 'अरे दक्ष मैं भिक्षुक हूँ। मुझे भिक्षा प्रदान करो।'' घर में जितने भी लोग थे, सभी का इस महाघोर शब्द से हृदय तक काँपने लगा। सभी अपने-अपने कार्य से विरत हो गये। दक्ष ने बकरे की बोली से संकेत किया। तब कोई देवता भिक्षुक के पास गया। वह देवता उस भीषणाकृति महारुद्र को देखकर भयपूर्ण दर्प के साथ पूछने लगा 'तुम कौन हो! तथा क्या चाहते हो? तुमको तो देखकर यह नहीं लगता कि तुम भिक्षुक हो ! तुम दर्पयुक्त लग रहे हो। भिक्षुक का आकार ऐसा नहीं होता, वह विनयावनत होता है।''

रुद्र कहते हैं – मैं निश्चय ही भिक्षाप्रार्थी हूँ। मेरा नाम रुद्र है। मैं स्वभावत: भीमाकृति हूँ। यहाँ मैं सती की भिक्षा माँगने आया हूँ। क्या तुम लोग सुलोचना सती को देने में सक्षम हो? यदि तुम सक्षम नहीं हो, तब कहो, कौन सक्षम होगा?

इधर रुद्र ने यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। तब दक्ष क्रोध से भरे नेत्रों से रुद्र को देखकर कहने लगे – ''इसी रुद्र ने सती का हरण करके हमारे निर्मल कुल को कलंकित किया था। इस दुरात्मा को यहाँ से दूर करो।''

रुद्र कहते हैं – ''बकरे के मुखवाले ! तुम अस्फुट शब्दों में क्या कहते हो? अब हमें उस श्यामवर्ण परम सुन्दरी सती को प्रदान करो, नहीं तो सबके समक्ष इस यज्ञ के साथ तुमको भी नष्ट करूँगा।''

दक्ष कहते हैं – ''हे शिवाधम ! पहले भी मैंने अपनी इच्छा से तुमको अपनी कन्या सती को प्रदान नहीं किया था, अब कैसे प्रदान करूँगा? सती ने स्वेच्छा से तुमको पति स्वीकार किया था तथा मैंने भी उसी दिन से मान लिया था कि सती मृत हो गयी। अभी सती ने यहाँ आकर अपना वह मृत शरीर पुन: त्याग दिया तथा प्रेतत्व को प्राप्त हो गयी। तुम प्रेतत्व स्थान प्रिय हो, अत: प्रेतों के स्थान में जाकर उसकी खोज करो। यह स्थान प्रेतलोक नहीं है तथा मैं भी प्रेतराज नहीं हूँ। मैंने तुमको कदापि नहीं बुलाया। तब यहाँ मरने क्यों आये हो? यहाँ से चले जाओ। वृथा यज्ञ में विघ्न करना उचित नहीं है।''

यह सुनकर वीरभद्ररूपी महादेव ने दक्ष का मस्तक उखाड़ लिया। तब दक्षपत्नी प्रसूति ने शिव की स्तुति कर उनके क्रोध को शान्त किया। तब उपस्थित देवताओं को कहा – ''एक पशु का मस्तक लाकर दक्ष को लगाया जाये।''

भगवान शिव माँ सती को ले जाते हुए

रुद्रदेव का यह वाक्य सुनकर ब्रह्मा तथा विष्णु की आज्ञा से नन्दीश्वर एक बकरे का मस्तक लाये तथा उसे दक्ष के सिर से युक्त कर दिया। प्रजापति दक्ष ने जीवित होकर ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर का दर्शन किया तथा उनकी अपूर्व शोभा से विस्मित हो गया। दक्ष का चित्त अब स्वच्छ किये दर्पण की तरह निर्मल हो गया था। वह कोटि चन्द्र प्रभायुक्त महेश्वर की मूर्ति का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि परमात्मा देव महेश्वर का मुखमण्डल जय से युक्त अर्पूव रूप से शोभायमान है। करद्वय में त्रिशूल तथा डमरू है। सर्वांग स्वर्ण आभूषणों से सजा है। अणिमादि सभी सिद्धियाँ मूर्तिमान होकर उनकी उपासना कर रही हैं। वे ब्रह्मा तथा विष्णु के मध्य में विराजमान हैं। महादेव की यह मूर्ति देखकर दक्ष ने स्तुत करने का प्रयास किया, किन्तु वह बोल नहीं सका।

दक्ष कहते हैं – ''हे देवदेवेश्वर! आप सुर-असुरगण द्वारा वन्दित हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप विश्वभावन तथा विश्वेश्वर हैं। आपको प्रणाम।''

प्रजापति अपने स्वयं कृत अपराध से भयभीत होकर महादेव के चरणों पर गिर पड़े। तब सभी देवता उन पर प्रसन्न हो गये। दक्ष पुन: पुन: शम्भु के चरणों में गिर-गिर कर प्रणाम करने लगे तथा पुन: स्तव करने लगे।

प्रजापति इधर अनुताप कर रहे थे और उधर महादेव प्रजापति से बारम्बार पूछते जा रहे थे। ''मेरी सती कहाँ हैं?'' कुछ क्षणों बाद क्षुब्ध शंकर वहाँ से उठे तथा 'सती-सती' 'काली काली' कहते भयानक शब्दोच्चार करते हुए उत्तर

की ओर चले गये, जहाँ दाक्षायणी ने देह त्याग किया था। वे उस दुर्गम स्थान पर पहुँचे। वहाँ जाकर देखते हैं कि वहाँ दाक्षायणी का शव पड़ा है। अनावृत तथा अधोमुख सती की देहलता वहाँ भूलुण्ठित थी। उस देह में प्राण न होने पर भी अद्‌भुत तेज से शव-देह दीप्त था।

केवल उनके नेत्रत्रय उलट गये थे, यही मृत चिह्न लक्षित था। तब महेश्वर कहने लगे – हे साध्वी ! यह देखो दुर्भाग्यशाली त्रिलोचन यहाँ उपस्थित है। हे सती ! तुम हम सबको अकृतार्थ रखकर स्वयं परलोक जाकर कृतार्थ हो रही हो ! मैंने तथा तुम्हारे पिता दक्ष ने तुम्हारे साथ अपराध किया है, इसीलिये तुमने मेरा त्याग किया। तुम्हारे पिता मूढ़त्व के कारण तुमको पहचान न सके, तथापि मैंने तो तुम्हारा त्याग कदापि नहीं किया था। भगवान शिव सामान्य व्यक्ति की तरह इस प्रकार से विभिन्न प्रकार से विलाप कर रहे थे। तत्पश्चात् उन्होंने सती के शव को अपनी भुजाओं से उठाकर अपने मस्तक पर रखा।

जगदात्मा महेश्वर ने देवी का शवदेह मस्तक पर रखा तथा परमानन्द से कहने लगे – ''हे सती ! मैंने लोक-लज्जा से कभी भी तुमको भार्या नहीं कहा, अब मेरा क्या सौभाग्य है, जो मैं तुमको मस्तक पर ले जा रहा हूँ।'' यह कहकर भगवान त्रिलोचन परमानन्द से विह्वल होकर नृत्य करने लगे। ब्रह्मादि देवता यह दर्शन करने गगनपथ पर उपस्थित थे। महान् ताण्डव पण्डित महेश्वर देवी का शव कभी मस्तक पर, कभी बायें हाथ पर, कभी दाहिने हाथ पर धारण करके समग्र धरणी मण्डल पर नृत्य करने लगे।

तब देवता, मनुष्यादि सभी चिन्ता करने लगे कि भगवान महेश्वर को कैसे शान्त किया जाये? जो समस्त जगत के पालनहार हैं, वे भगवान विष्णु थोड़ा भयभीत हो सुदर्शन चक्र के द्वारा महादेव के मस्तकस्थ सती-देह को क्रमशः खण्डित करने लग गये।

जब महादेव भूमि पर चरण रखते थे, तभी भगवान् विष्णु तत्काल सती-देह का छेदन चक्र से कर देते। इस प्रकार सुदर्शन चक्र से विच्छिन्न होकर देवी के अंग जहाँ-जहाँ गिरते, वह-वह स्थान पुण्यभूमि हो गया। त्रिलोचन के मस्तक से सती-देह सुदर्शन से छिन्न होकर कहीं पद, कहीं जंघा, कहीं जिह्वा, कहीं मुख, कहीं स्तन, कहीं वक्ष, कहीं बाँह, कहीं हाथ, कहीं पार्श्वद्वय, कहीं योनि इस प्रकार से गिर रहे थे। पृथ्वी के जिस स्थान में ये अंग-प्रत्यंग पतित हो रहे थे, वे स्थान जगत् में श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रद माने गये। देवी इन सभी स्थानों में नित्य स्थित रहती हैं। देवी के अंग पृथ्वी पर गिरते ही लोकानुग्रहार्थ पाषाण हो गये। ब्रह्मा-विष्णु-दिक्पाल-सिद्ध-चारणादि वहाँ उपस्थित रहकर अहर्निश भगवती सती का पूजन करते हैं। ○○○

(बृहद्धर्मपुराण के आधार पर लिखित)

हे महात्मन् ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा हृदय मेरा निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण अत्यन्त विशुद्ध हो गया है। इसीलिए मैं तुम्हारे दर्शन के लिए आया हूँ। मुझे प्रसन्न करने के लिए तुम्हें और किसी साधना की आवश्यकता नहीं है।

जो कोई इस संसार में मेरी शरण में आते हैं, मेरा ध्यान करते हैं और मेरे पवित्र नाम के मन्त्र का जप करते हैं, वे बिना माँगे निश्चित रूप से मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे, क्योंकि मैं जानता हूँ कि उनके लिए कोई अन्य गति नहीं है।

सत्य को मत छोड़ो। हमेशा प्रसन्न रहो। इन्द्रियों के सुखोपभोग के विचार को तत्काल दमित करो। जन्म, वार्धक्य और मृत्यु को अपनी नियति मानते हुए हमेशा सौम्य बने रहो। अपनी पत्नी और सन्तानों के प्रति उत्कट प्रेम या आसक्ति मत करो। — भगवान श्रीरामचन्द्र

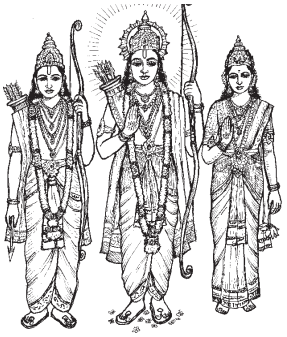

रामराज्य का स्वरूप (५/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

महाराज दशरथ ने माना कि मुझे सौन्दर्य मिला और कैकय नरेश को लगा कि मेरे दौहित्र को अयोध्या का राज्य मिलेगा, इस प्रकार की वृत्ति उत्पन्न हुई, यह संस्कार कैकेयी के अन्त:करण में विवाह के समय से ही गहराई से पड़ा हुआ है। उसकी पराकाष्ठा कब हो गई? एक बात ध्यान रखिएगा कि क्रियापरायण व्यक्ति लोभी और अविश्वासी बहुत होता है। उसको हमेशा यह सन्देह बना रहता है कि कोई ठग तो नहीं रहा है। मन्थरा इन्हीं दोनों दुर्बलताओं को कैकेयी के अन्त:करण में उभार देती है। अविश्वास की वृत्ति के कारण महाराज कैकय को यह चिन्ता हो गई कि दशरथजी ने वचन तो दे दिया है, लेकिन क्या पता, जब विवाह के बाद लौटकर जाएँगे और अयोध्या में यह प्रश्न उठाया जायेगा कि सूर्यवंश की परम्परा में तो ज्येष्ठपुत्र को ही राज्य मिलता है, तो फिर ऐसी स्थिति में एक ओर कुल की परम्परा और दूसरी ओर दिया गया वचन, इन दोनों में टकराहट होगी, तो किसकी विजय होगी? इसलिए उन्होंने सोचा कि मेरी बेटी तो बड़ी भोली-भाली है, कोई बुद्धिमान इसके साथ चाहिए, जो इसकी रक्षा करे। उनकी दृष्टि में उनके नगर में जो सबसे अधिक बुद्धिमती थी, वह मन्थरा थी। मन्थरा को उन्होंने कैकेयी के साथ लगा दिया। बोले, तुम मेरी बेटी के साथ रहकर मेरी बेटी की रक्षा करो। यह मन्थरा कौन है? बस वही क्रम से जोड़िए, कर्तृत्व से क्रिया का जन्म हुआ, क्रिया के साथ फलाकांक्षा जुड़ गई और फलाकांक्षा की पराकाष्ठा में लोभ की वृत्ति भी उसके साथ जोड़ दी गई। फलाकांक्षा का अर्थ यह है कि फल चाहना, वहाँ तक तो कोई बात नहीं है, पर फलाकांक्षा जब लोभ के रूप में बदल जाती है, तब फलाकांक्षा की, फल पाने की इच्छा की कोई सीमा नहीं रह जाती है –

जौ दस बीस पचास मिलै
सत होय हजारन लाख मंगैगी।
कोटि अरब्य खरब्य असंख्य
पृथवीपति होन की चाह जगैगी।।
स्वर्ग पताल को राज मिलै
तबहूँ तृषना अति आग लगैगी।
सुन्दर एक संतोष बिना
सठ तेरि तो भूख कभी न मिटैगी।।

यह क्रिया के साथ लोभ की वृत्ति के रूप में मन्थरा कैकेयी के साथ चली जाती है। उसके बाद मन्थरा ने क्या किया?

कैकेयीजी अयोध्या आईं। अयोध्या का सारा वातावरण उदारता से ओतप्रोत था। कौशल्याजी, सुमित्राजी और अन्य जितनी रानियाँ हैं, अयोध्यापुरवासी हैं, सब बड़े उदार चरित्र के हैं। उस उदार चरित्र का परिणाम हुआ कि कैकेयीजी के जीवन में बहिरंग परिवर्तन आया, अन्तरंग परिवर्तन नहीं। ये दोनों में अन्तर है। यहाँ पर स्वभाव की बात आती है। क्रिया का परिवर्तन बहिरंग परिवर्तन है और स्वभाव का परिवर्तन अन्तरंग परिवर्तन है। कैकेयी के जीवन में बहिरंग रूप में, क्रिया में तो परिवर्तन आया, पर भीतर के स्वभाव में परिवर्तन नहीं आया। यह परिवर्तन तो सामने आया कि कैकेयीजी ने जब यह देखा कि राम तो अपनी माता से भी अधिक उदार व्यवहार मुझसे करते हैं, मेरी पूजा करते हैं, मेरा सम्मान करते हैं, मेरी आज्ञा का पालन करते हैं, तो उनके मन में इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया यही हुई कि बदले में वे भी इसी प्रकार सद्व्यवहार अयोध्यावासियों से या श्रीराम के प्रति करने लगीं। किन्तु यह जो व्यवहार में, क्रिया में परिवर्तन है, यह स्वभाव का परिवर्तन नहीं है। इस

सन्दर्भ में रामायण में तो थोड़ा कठोर शब्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि वह पंक्ति कैकेयीजी के सन्दर्भ में चरितार्थ नहीं है। पर रामायण में उस पंक्ति के द्वारा यह बताया गया कि क्रिया के इस परिवर्तन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अब व्यक्ति का स्वभाव बदल गया। वह पंक्ति आपने पढ़ी होगी –

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।

कभी तो ऐसा होता है कि जो दुष्ट व्यक्ति होता है, वह भी अच्छे व्यक्ति का संग पाकर अच्छी क्रिया करने लगता है, लेकिन इतना होते हुए भी गोस्वामीजी कहते हैं –

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।। १/६/४

पर उसका स्वभाव नहीं छूटता और उसका वह स्वभाव समय-समय पर प्रगट हुआ करता है।

कैकेयीजी का भीतर का स्वभाव अयोध्या के अच्छे व्यवहार से बदला हुआ प्रतीत हुआ। उनमें उदारता आ गई। वह उदारता इस सीमा तक आ गई कि उन्होंने महाराज दशरथ से यह कहा कि मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र को अयोध्या का राज्य देने का आपने जो वचन दिया है, उस वचन के प्रति मेरा आग्रह नहीं है, मैं यह चाहती हूँ कि आप अयोध्या के राजसिंहासन पर राम को ही बैठावें। महाराज श्रीदशरथ गदगद हो गये। अयोध्या में दूर-दूर तक यह समाचार फैल गया और चारों ओर कैकेयी की उदारता की प्रशंसा होने लगी कि महारानी कितनी सहृदय हैं, कितनी उदार हैं कि वे अपने पुत्र के स्थान पर सौत के पुत्र को राजा बनाने के लिए व्यग्र हैं। पर गोस्वामीजी ने दृष्टान्त दिया। मन्थरा कैकेयी की दुर्बलताओं से बड़ी गहराई से परिचित है। वह तो कैकय नरेश के द्वारा भेजी गई है, वहाँ से आई हुई है और इसलिए गोस्वामी जी ने उत्तर दिया –

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी।
भुइँ भइ कुमति कैकई केरी।। २/२२/५

उन्होंने कहा कि कैकेयी की बुद्धि मानो जमीन है, विपत्ति ही बीज है और मन्थरा ही वर्षा है। जैसे धरती पर जो बीज पहले से ही पड़ा हुआ है, वर्षा ऋतु में वही अंकुरित होता है। इसी प्रकार से मन्थरा ने क्या किया? उसने राम के प्रति अविश्वास और यह याद दिलाने की चेष्टा की कि आप यह सोचिए कि आपको बदले में क्या मिल रहा है?

याद रखिएगा, प्रेम में बदला पाने की वृत्ति नहीं है। रामराज्य के बारे में कहा जा चुका है। अधर्मराज्य में छीनने की वृत्ति है और धर्मराज्य में आदान-प्रदान की वृत्ति है, पर प्रेमराज्य का अर्थ क्रिया के बदले में क्या मिला, यह नहीं है। जहाँ देना ही देना है, पाने की वृत्ति नहीं है, वहाँ प्रेम है। इसी की पराकाष्ठा श्रीभरत के जीवन में दिखाई देती है। श्रीभरत भगवान राम से प्रेम करते हैं, भगवान राम की भक्ति करते हैं, उसके बदले में क्या चाहते हैं?

कई लोग भगवान की भक्ति करते हैं, तो बदले में सांसारिक वस्तुएँ चाहते हैं और कई लोग सांसारिक वस्तु नहीं चाहते, तो कीर्ति चाहते हैं, यश चाहते हैं कि भक्त के रूप में लोग मुझे पूजें। पर श्रीभरत के चरित्र में आगे चलकर आपको मिलेगा कि त्रिवेणी के तट पर वे खड़े हो गये और याचना की। वह याचना संसार के बिरले ही कोई व्यक्ति कर पायें, जो श्रीभरत ने किया। श्रीभरत ने कहा –

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही।
लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।। २/२०४/१

मुझे संसारवाले यह कहें कि भरत तो राम के विरोधी हैं या उन्होंने षड्यन्त्र किया है और मैं तो यहाँ तक चाहता हूँ कि भगवान राम भी मुझे कुटिल समझें। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। ऐसे भी भक्त होते हैं, जो चाहते हैं कि संसारवाले हमारी भावना जानें चाहे न जानें, पर प्रभु बिना कहे सब जानते हैं –

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। १/१६१/२

पर श्रीभरत कहते हैं कि न न, प्रभु मुझे भक्त के रूप में न जानें। क्यों? श्रीभरत में निष्कामता की, समर्पण की ऐसी पराकाष्ठा है कि वे कहते हैं कि हमारे प्रभु यदि यह जान जाएँगे कि भरत भक्त हैं, तो हमारे प्रभु इतने संकोची हैं, इतने शीलवान हैं कि विनयपत्रिका में गोस्वामीजी ने यहाँ तक लिख दिया कि प्रभु तो स्वभाव से ही इतने कृतज्ञ हैं –

अति कृपालु सुकृतज्ञ दयानिधि
सकुचत सकृत प्रनाम किए ते।

अगर कोई प्रणाम करे और बदले में कुछ न माँगे, तो भगवान को यह संकोच लगता है कि इसने कुछ नहीं माँगा। इसने मुझे प्रणाम किया, तो बदले में मैं इसको क्या दूँ?

वह प्रसिद्ध भक्त गाथा है न। उड़ीसा में कोई भक्त थे। जब वे भगवान का दर्शन करने जाते थे, तो भगवान का मुख एक ओर हो जाता था, सामने से भगवान का दर्शन उनको

नहीं होता था। उनके मन में बड़ी ग्लानि, बड़ा पश्चात्ताप होता कि भगवान तो मेरा मुख भी नहीं देखना चाहते, अपने मुख का दर्शन भी नहीं देते। बड़े व्याकुल थे। वहीं पर पुरी में कोई कोढ़ी था। उस कोढ़ी को अचानक स्वप्न हुआ कि यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा कोढ़ दूर हो, तो तुम उस भक्त से जाकर अनुरोध करो। वे मुझसे कहेंगे, तो तुम्हारा कोढ़ दूर हो जायेगा। कोढ़ी ने जाकर भक्त से यह कहा कि ऐसा स्वप्न आया है। भगवान ने ऐसा आदेश दिया। भक्त तो रोने लगा। बोले, तुम मेरी कैसी हँसी उड़ा रहे हो? मुझे तो प्रभु दर्शन तक नहीं देते हैं, भला यह तुम्हारा स्वप्न कैसे सही हो सकता है। कोढ़ी ने कहा कि मुझे स्वप्न हुआ है, तो कम-से-कम कह देने में क्या आपति है? उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि उस कोढ़ी का कोढ़ दूर हो जाये और सचमुच उसका कोढ़ दूर हो गया। उसके पश्चात् भक्त जब दर्शन करने गया, तो भगवान का मुख सामने था। भक्त को आश्चर्य हुआ। बोले इतने दिनों तक आपने कभी सन्मुख दर्शन नहीं दिया, आज मुझमें कौन-सी विशेषता आ गई? भगवान ने कहा कि तुमने इतने दिनों तक कुछ नहीं माँगा, तो मैं मुँह दिखाने योग्य भी नहीं था। आज कुछ माँग लिया, तो मुँह दिखाने योग्य हो गया। रामायण में भी हनुमानजी के सामने भगवान कहते हैं –

सनमुख होइ न सकत मन मोरा। ५/३१/६

मैं तो तुम्हारी ओर मुँह करके देखने योग्य भी नहीं हूँ। श्रीभरत कहते हैं कि हमारे प्रभु इतने शीलवान हैं, इतने संकोची हैं कि उनको अगर यह लगेगा कि भरत भक्त है, भक्ति करता है और बदले में कुछ नहीं चाहता है, तो वे संकोच की सीमा में गड़ जायेंगे। इसलिए कितना अच्छा हो कि भगवान राम भी मुझे कुटिल समझ लें। संसार के लोग भी मुझे राम का द्रोही मानें। लेकिन

सीता राम चरन रति मोरें।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।। २/२०४/२

त्रिवेणी मैया, मेरी यह प्रार्थना है कि श्री सीताराम के चरणों में हमारी प्रीति, हमारी रति निरन्तर बढ़ती रहे। याद रखिएगा कि जहाँ पर क्रिया देखकर प्रीति होगी, बदला देखकर प्रीति होगी, वहाँ पर प्रेम टिकेगा नहीं। इसीलिए कई बार लोग कहा करते हैं कि रामायण में यह सिखाया गया है कि भाई से भाई का क्या व्यवहार होना चाहिए। पिता का पुत्र से क्या व्यवहार होना चाहिए, पति-पत्नी का क्या व्यवहार होना चाहिए। रामायण में यह भी सिखाया गया है। किन्तु रामायण का मुख्य आधार यह नहीं है, यह बिना संकोच के मैं कहूँगा। इसका अभिप्राय क्या है? रामायण का मूल दर्शन क्या है? भाई-भाई के प्रेम की बात है, तो एक बड़ा विचित्र दृष्टान्त आपको मिलेगा। क्या? श्रीभरत भगवान राम से बड़ा प्रेम करते हैं, भगवान राम श्रीभरत से बड़ा प्रेम करते हैं, तो आप कहेंगे कि यह भाइयों के प्रेम का दृष्टान्त है। पर बालि और सुग्रीव भी तो भाई हैं। रावण और विभीषण भी तो भाई हैं। पर भगवान ने सुग्रीव को यह पाठ तो नहीं पढ़ाया कि बालि से तुम हमारे समान भाई बनो या भरत के समान भाई बनो और विभीषण को तो यह पाठ नहीं पढ़ाया कि तुम महान भ्रातृभक्त बनो। यह एक लम्बा प्रश्न है। इस पर कहने का इस समय अवसर नहीं है। पर इसका अभिप्राय यह हुआ कि रामायण में कर्तव्य का भी जो आधार है, वह कर्तव्य न होकर भक्ति है। कर्तव्य की नींव पर जो कर्तव्य टिकेगा, वह स्थाई नहीं हो सकता। कर्तव्य का आधार क्या है? यह कौन नहीं जानता कि भाई से भाई को अच्छा व्यवहार करना चाहिए, पर कहाँ कर पाता है। समस्या जानने की नहीं है, समस्या कर पाने की है कि कर पाता है कि नहीं कर पाता है। सुग्रीव ने जो अपनी आत्मकथा सुनाई, तो यही कहा –

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई।। ४/५/१

बालि और सुग्रीव में बड़ा गहरा प्रेम था, लेकिन वह प्रेम टिका? रावण विभीषण का बड़ा सम्मान करता था, पर वह सम्मान टिका? उसका अभिप्राय यह है कि कर्तव्य के आधार पर, कोरे व्यवहार के आधार पर जो सम्बन्ध टिके हुए होंगे, वे कुछ समय तक तो ठीक जान पड़ेंगे, पर दरार पड़ ही जायेगी। जैसे मकान की नींव यदि कमजोर हो, तो कितना भी बड़ा भवन क्यों न हो, दरार आने का, गिरने का डर बना रहेगा। उसका अभिप्राय है कि जब व्यक्ति के भाव में और प्रीति का आधार व्यक्ति न होकर भगवान का दर्शन होगा, तब वह टिकाऊ होगा।

गोस्वामीजी कहते हैं –

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें।
सब मानिअहिं राम के नातें।। २/७३/७

भाई का भाई के नाते नहीं, राम के नाते से प्रेम होगा,

तो टिकाउ होगा। जब राम के नाते से प्रेम होगा, तब क्या होगा, अन्तर यहाँ बता रहे हैं।

कैकेयीजी के और सुमित्राजी के प्रेम में क्या अन्तर है? कैकेयीजी का प्रेम जगत प्रसिद्ध था। अयोध्या में चारों ओर यह पता था कि कैकेयीजी राम से जितना प्रेम करती हैं, उतना प्रेम कोई नहीं करता। सुमित्राजी के प्रेम को कोई जाननेवाला नहीं था। लेकिन समय ने प्रगट कर दिया, कैकेयी के प्रेम का भवन ढह गया और सुमित्राजी का प्रेम इतना सुदृढ़ रहा कि कठिन से कठिन, विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी वह डिगा नहीं। उसके मूल में अन्तर क्या है? कैकेयी का प्रेम व्यवहार के आधार पर, केवल कर्तव्य के आधार पर टिका हुआ था। सुमित्रा अम्बा का जो श्रीराम से प्रेम था, वह इस नाते नहीं था कि श्रीराम मेरे बेटे हैं या मेरे सौत के बेटे हैं या मेरे पति के बेटे हैं। बेटे के प्रति सद्व्यवहार के नाते प्रेम की आवश्यकता है। कैकेयी ने राम को न तो कभी ईश्वर के रूप में देखा और न तो उन्होंने सम्बन्ध को प्रेम के आधार पर चुना। व्यवहार के आधार पर उनके सद्व्यवहार की नींव थी। उसको भी हिला दिया मन्थरा ने। कह दिया, राम का व्यवहार पहले बहुत अच्छा था, पर जानती हो, अब राम भरत को कारागार में डालनेवाले हैं, ऐसा होनेवाला है, ऐसा होनेवाला है ! इसका अभिप्राय क्या है? संसार में घटनाओं से ही सम्बन्ध नहीं बदल जाते हैं, कल्पनाओं से भी बदल जाते हैं। बस, कल्पना हो जाये कि यह व्यक्ति हमारा बुरा चाहता है, ऐसा चाहता है, ऐसा चाहता है आदि तो व्यवहार बदल जाता है। कल्पना करने में व्यक्ति बड़ा निपुण है। दूसरों के द्वारा ही ऐसे संदेह की वृत्ति उत्पन्न होती है कि अच्छे-अच्छे सम्बन्धवालों में भी दूरी उत्पन्न हो जाती है। मन्थरा ने यही सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया कि क्या होनेवाला है, आपको पता है? एक भी वस्तु प्रामाणिक नहीं थी। पर कह दिया –

भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।।२/१९।।

भरत को तो राम जेलखाने में डालने वाले हैं और लक्ष्मण जो हैं, वह राम के नायब होंगे। मन्थरा के मन में लक्ष्मणजी के प्रति बड़ा द्वेष था। लक्ष्मणजी जानते थे कि झगड़े की जड़ मन्थरा ही है।

मन्थरा को कैकेयी की और अपने स्वार्थ की बड़ी चिन्ता थी। उसने कल्पना की और उस कल्पना मात्र में कैकेयी का सारा स्नेह ढह गया। सचमुच सुमित्राजी की तो बड़ी परीक्षा हुई। क्या? जब हनुमानजी के द्वारा यह समाचार मिला कि लक्ष्मण मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए हैं। सुमित्राजी के सम्बन्ध का आधार अगर व्यवहार होता, अगर व्यावहारिक नाता होता, तो उनको क्रोध आए बिना न रहता। वे यह सोचतीं कि मैंने अपना बेटा राम के साथ भेज दिया और राम इतने स्वार्थी निकले कि मेरे पुत्र को उन्होंने मरवा दिया और स्वयं आनन्द से जीवित हैं। मैंने बड़ी भूल की। अगर यह बात उनके मन में आ जाती, जैसाकि व्यावहारिक संसार में ऐसी बातें आती-रहती हैं। लेकिन गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस प्रेम का आधार निष्कामता है, व्यवहार और लोभ का नहीं है, वहाँ सुमित्रा अम्बा ने शत्रुघ्न की ओर देखा और उन्होंने शत्रुघ्न जी को यह संकेत किया, वह पंक्ति गोस्वामीजी की नहीं है, पर उनकी भावनाओं के निकट है।

बोली धन्य सुवन मम आजू।
जूझ्यो समर स्वामि के काजू।।
पर एक दुख मोहि दीन्ह बिधाता।
कुसमय भए राम बिनु भ्राता।।

राम आज अकेले हो गये। शत्रुघ्न, तुम्हें चाहिए कि तुम लक्ष्मण के पथ का अनुगमन करो। यह कौन कह सकता है? जिसके प्रेम का आधार केवल व्यवहार मात्र नहीं है। इसे यों कह लीजिए कि कैकेयी के अन्त:करण में राम के प्रति संशय, भरत के लिए राज्य का प्रलोभन और भेद-बुद्धि, ये तीन कमियों के संस्कार पहले से विद्यमान थे। मन्थरा ने इन तीनों को उकसा दिया और परिणाम हुआ कि रामराज्य बनते-बनते रुक गया।

यह रामराज्य कैसे श्री भरत के द्वारा और कैसे इन कमियों का उत्तर श्रीभरत के द्वारा मिलता है, चरित्र का निर्माण होता है, तब रामराज्य की स्थापना होती है, इसकी चर्चा हम कल से प्रारम्भ करेंगे। आज बस इतना ही। बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमश:)**

राजा के पास पहुँचना हो तो द्वारपाल तथा प्रहरी आदि कर्मचारियों को सन्तुष्ट करना पड़ता है। उसी प्रकार राजाधिराज ईश्वर के पास पहुँचने तथा उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए साधन-भजन, भक्तसेवा तथा साधुसंग यह खूब करना पड़ता है।

विषय-चिन्तन तथा सांसारिक दुश्चिन्ताओं से मन को अस्थिर न होने दो। जो कुछ करना आवश्यक हो उसे ठीक समय पर करो और मन को सदा भगवान में मग्न रखो।

– श्रीरामकृष्ण देव

श्रीसंकटमोचनस्तुतिः

(छन्दः – अनुष्टुप)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

श्रीसीतारामयोः शक्तिभूतो वायुसुतो बली।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।१।।
येनाबलोऽपि सुग्रीवो बालिराज्यमपाहरत्।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।२।।

– जो पवनपुत्र बलवान् हनुमान श्रीसीता और राम की शक्ति बनकर विद्यमान हैं, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है। जिस हनुमान के कारण बलहीन बने सुग्रीव भी बालि का राज्य छीनकर स्वयं राजा बन बैठे, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है।

समुद्रो लङ्घितो येन मत्वा स्थालीजलं यथा
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।३।।
विदित्वा जानकीवृत्तं कृतं लङ्काविनाशनम्।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।४।।

– जो हनुमान् विशाल समुद्र को थाली में पड़ा जल जैसा समझकर पार कर गये, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है। जिस हनुमान ने जानकीजी का समाचार जानने के बाद लंका का विनाश किया, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है।

वैद्यं शैलं समानीय सौमित्रो येन रक्षितः।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।५।।
विभीषणोऽभवद् येन लङ्केशश्च हरिप्रियः।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।६।।

– जिस हनुमान ने वैद्य और संजीवनीबूटीयुक्त पर्वत को लाकर लक्ष्मणजी की प्राण-रक्षा की, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है। जिस हनुमान के कारण विभीषण लंका का राज्य पाकर श्रीराम के प्रिय पात्र बन गये, उनके लिए मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है।

साक्षाद् रुद्रावतारो यः सर्वेषां प्राणिनां प्रभुः।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।७।।
हितं साध्यति निष्कामं यो भक्तानां पदे पदे।
तस्य किञ्च महत्कार्यं मत्कष्टानां निवारणम्।।८।।

– जो हनुमान समस्त प्राणियों के स्वामी रुद्रदेव के साक्षात् अवतार हैं, जो हनुमान निष्काम रूप से कदम-कदम पर भक्तों का हित करते रहते हैं, उनके लिये मेरे कष्टों का निवारण करना कौन-सा बड़ा कार्य है।

सर्वदुःखविनाशाय श्रीरामानुग्रहं त्वरितमाप्तुम्।
गीत्वा मनोवाञ्छितं फलं प्राप्स्यति नात्र संशयः।।

– सारे दुःख का नाश करने के लिये और श्रीराम का शीघ्र अनुग्रह पाने के लिए इस स्तुति को गानेवाला अपना मनोवांञ्छित फल प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ○○○

कविता

मंगलमय हो नव-सम्वत्सर

आनन्द तिवारी पौराणिक

खुशियाँ छाये घर-घर।
मंगलमय हो नव-सम्वत्सर।।
प्रारम्भ हुआ बीस सौ उनासी सम्वत्सर।
अभिनन्दन अक्षत, रोली थाली भर।।
ऋतु बसन्त धरती शृंगारित।
वन, उपवन, पुष्पित, सुरभित।।
चेटीचंड, नवरात्रि उतरी पृथ्वी पर।
मंगलमय हो नव-सम्वत्सर।।
इस दिन ब्रह्म ने सृष्टि रचाया।
प्रभु राम ने राज सिंहासन पाया।।
राज युधिष्ठिर गद्दी पाये।
विक्रमादित्य सम्राट कहाये।।
आर्य समाज संदेश हुआ अमर।
मंगलमय हो नव-सम्वत्सर।।
यह दिन सुख, यश, लेकर आया।
नाम तभी आनन्द कहाया।।
सजे रंगोली, लहराये ध्वज।
बजे शंख, मृदंग, पखावज।।
मंगलदीप जले घर-हर।
मंगलमय हो नव-सम्वत्सर।।

गलतियाँ नहीं होंगी, तो विद्यार्थी अध्ययन कैसे करेंगे?

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सन् १९४८ में अहमदाबाद की एक अनुसन्धान प्रयोगशाला में कुछ विद्यार्थी प्रयोग कर रहे थे। भारी विद्युत धारा के प्रवाह के कारण यन्त्र जल कर नष्ट हो गया। विद्यार्थी डर रहे थे, क्योंकि इस यन्त्र के कार्य न करने के कारण प्रयोग विलम्बित हो जाते थे। उस समय दो लोग आपस में कुछ इस तरह बातें कर रहे थे, 'वे आ रहे हैं, उन्हें बता दो।' ''मैंने यह हानि की। तुम स्वयं ही जाकर उन्हें बोल दो।'' ''नहीं, मैं नहीं बोल सकता। मुझे डर लग रहा है।''

जब ये बातें हो रही थीं, उसी समय विक्रम साराभाई उनके पास आये और पूछा, क्या बात है? ''विद्युत मीटर में से भारी विद्युत धारा के प्रवाह होने से मीटर में गड़बड़ी हो गई है।'' उत्तर मिला, ''बस, इतनी-सी ही बात है?'' उसके बारे में अधिक चिन्ता मत करो। अध्ययन करते हुए ऐसी घटनाएँ होती हैं। जीवन में गलतियाँ नहीं होगीं, तो विद्यार्थी अध्ययन कैसे करेंगे? तुम लोग भविष्य में सावधानी से कार्य करना सीखो, वही बहुत है।

विक्रम साराभाई का जन्म १२ अगस्त, १९१९ में गुजरात के अहमदाबाद में हुआ। उनके पिता का नाम अम्बालाल और माता सरलादेवी थीं। एक बार पाँच या छह वर्ष की आयु में विक्रम अपने परिवार के साथ शिमला गये थे। उसने देखा कि उनके पिता को प्रतिदिन बहुत से पत्र आते हैं। बालक सोचने लगा कि उसे भी ये पत्र मिलने चाहिए। विक्रम ने अपने पिताजी के कार्यालय से कुछ लिफाफे लिए, उनमें अपना नाम-पता लिखा तथा टिकट लगाकर डाकघर में छोड़कर आया। एक दिन उनके पिता को पता चल गया कि विक्रम को प्रतिदिन पत्र आ रहे हैं और उन्होंने विक्रम से इसके बारे में पूछा, विक्रम ने हँसकर कहा, ''मैं स्वयं ही अपने आपको पत्र लिखता हूँ।''

विक्रम बचपन से ही साहसिक थे। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने साइकिल चलानी सीखी थी। वे साइकिल को ऐसे खतरनाक ढंग से चलाते थे कि सब आश्चर्यचकित हो जाते थे। वे साइकिल पर हाथ ऊँचा कर पैरों को सीधा खींचते थे और आँखें बन्द करते थे। यदि कोई ऐसा करने से मना करते, तो भी वे किसी की नहीं सुनते थे। विक्रम के घर पर एक छोटा तालाब था। वह उस तालाब में एक नौकर और दो बच्चों के साथ नाव चलाते थे। एक बार नाव पलट गई, सभी तालाब में गिर गये और सहायता के लिए चिल्लाए। बागवान ने उनके चिल्लाने की आवाज सुनी और उसने ता-लाब में कूद कर सबके जीवन को बचाया।

विक्रम को गणित और विज्ञान के अध्ययन में अधिक रुचि एवं उत्साह था। विद्यालय में वह दूसरों से अध्ययन में सर्वश्रेष्ठ रहते थे।

विक्रम साराभाई स्वभाव से नम्र और सरल थे। वे एक बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। लोग अपनी समस्याओं को लेकर उनके पास आकर उनका समय व्यर्थ में गवाँ देते थे। लेकिन साराभाई उनकी बातों को धैर्य से सुनते थे, उन्हें साहस और आश्वासन देते थे। किसी ने उनसे पूछा कि क्या आपका बहुमूल्य समय व्यर्थ नहीं जा रहा है? उसके उत्तर में वे कहते, ''भारत एक विशाल देश है और लोग अपनी समस्याओं के हल के लिए कहाँ-कहाँ से आते हैं और हर व्यक्ति इतना भाग्यशाली नहीं है कि उसे भी वह ज्ञान मिला हो, जो हमें मिला है। इसलिए हमें इनकी बातों को सुनना और समझना चाहिए।''

विक्रम साराभाई किसी की भी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे। एक दिन एक कुली भारी बक्से को हाथगाड़ी से उनके संस्थान की ओर ले जा रहा था। उसे गाड़ी चलाने में कठिनाई हो रही थी। साराभाई यह देखकर शीघ्र ही दौड़ लगाकर कुली को गाड़ी चलाने में सहायता करने लगे।

विक्रम साराभाई विज्ञान के क्षेत्र में नवीनतम ज्ञानार्जन और उच्चतर अध्ययन के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते थे। भारत सरकार ने सन् १९६२ में उन्हें भौतिकविज्ञान के क्षेत्र में उनके विशेष कार्य के लिए ***'शान्ति स्वरूप भटनागर'*** पुरस्कार और सन् ***१९७२*** में मरणोपरान्त उन्हें ***पद्मविभूषण*** से विभूषित किया। डॉ. विक्रम साराभाई को ***भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का जनक*** कहा जाता है। १९६३ में इसरो के सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र का ***विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष केन्द्र*** के रूप में पुनः नामकरण किया गया। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (२३)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सूक्ष्म शरीर

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडी-सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति।।३/६।।

पदच्छेद : हृदि हि एष: आत्मा, अत्र एतत् एक-शतम् नाडीनाम् तासाम् शतम् शतम् एक-एकस्याम् द्वा-सप्तति: द्वा-सप्तति: प्रति-शाखा-नाडी-सहस्राणि भवन्ति आसु व्यान: चरति।

अन्वयार्थ – हृदि हि हृदय-आकाश में ही **एष: आत्मा** वह सूक्ष्म-शरीर-रूपी आत्मा निवास करता है। **अत्र** इस हृदय में **एतत् ये एकशतं** एक-सौ-एक **नाडीनां** प्रधान नाड़ियाँ हैं, **तासां** इनमें से **एक-एकस्यां** प्रत्येक की **शतं शतम्** सौ-सौ शाखाएँ हैं, **प्रति-शाखानाडी-सहस्राणि द्वासप्तति: द्वासप्तति:** इनमें से प्रत्येक शाखा-नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर हजार प्रशाखाएँ **भवन्ति** हो जाती हैं। **आसु** इन नाड़ियों में **व्यान:** व्यान वायु **चरति** विचरण करता है।

भावार्थ – हृदय-आकाश में ही वह (सूक्ष्म-शरीर-रूपी) आत्मा निवास करता है। इस हृदय में ये एक-सौ-एक प्रधान नाड़ियाँ हैं, इनमें से प्रत्येक की सौ-सौ शाखाएँ हैं, इनमें से प्रत्येक शाखा-नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर हजार प्रशाखाएँ हो जाती हैं। इन नाड़ियों में ही व्यान वायु विचरण करता है।

भाष्य – हृदि हि एष पुण्डरीक-आकार-मांसपिण्ड-परिच्छिन्ने हृदयाकाश एष आत्मा आत्मना संयुक्तो लिङ्गात्मा। अत्र अस्मिन् हृदये एतत् एकशतम् एकोत्तरशतं संख्यया प्रधान-नाडीनां भवति इति;

भाष्यार्थ – इस हृदय में ही कमल के आकार का मांसपिण्ड से घिरा हुआ जो हृदयाकाश है, उसी में यह (सूक्ष्म शरीर या अन्त:करण से युक्त) आत्मा निवास करता है। इस हृदय-पिण्ड में ये जो एक-सौ-एक संख्यावाली मुख्य नाड़ियाँ होती हैं;

भाष्य – तासां शतं शतम् एक-एकस्या: प्रधान-नाड्या भेदा:। पुनरपि द्वा-सप्तति: द्वा-सप्तति: द्वे द्वे सहस्रे अधिके सप्ततिश्च सहस्राणि, सहस्राणां द्वा-सप्तति: प्रति-शाखा-नाडी-सहस्राणि प्रति-प्रति-नाडीशतं संख्यया प्रधान-नाडीनां सहस्राणि भवन्ति।

भाष्यार्थ – उनमें से प्रत्येक प्रधान नाड़ी – सौ-सौ शाखाओं (१००-१००) में विभक्त है। फिर (उनमें से प्रत्येक की) बहत्तर-बहत्तर हजार (अर्थात् कुल ७२,७२,००,००० = ७२ करोड़ ७२ लाख) शाखा-नाड़ियाँ होती हैं।

भाष्य – आसु नाडीषु व्यानो वायु: चरति। व्यानो व्यापनात्। आदित्यात् इव रश्मयो हृदयात् सर्वतो-गामिनीभि: नाडीभि: सर्व-देहं संव्याप्य व्यानो वर्तते। सन्धि-स्कन्ध-मर्म-देशेषु विशेषेण प्राण-अपान-वृत्त्यो: च मध्य उद्भूत-वृत्ति: वीर्यवत्-कर्मकर्ता भवति।।

भाष्यार्थ – इन (करोड़ों) नाड़ियों में (से होकर) व्यान वायु संचार करता है। व्यापन करने से इसे 'व्यान' कहते हैं। (यह व्यापन कैसे करता है?) जैसे सूर्य से रश्मियाँ (फैल जाती हैं, वैसे ही) व्यान वायु हृदय से सब ओर जानेवाली नाड़ियों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर अपना कार्य करती है; और (घुटने, जानु, कुहनी आदि) जोड़ों, कन्धों, (भौंहों आदि) मर्मस्थानों में; और प्राण (खींचना) तथा अपान (छोड़ना) के अन्तराल में विशेष रूप से, अपनी शक्ति दिखानेवाले कारक बन जाता है।।३/६।। **(क्रमश:)**

सत्य परमधाम है। वह परमधाम है, क्योंकि उपनिषदों का भी वही गन्तव्य स्थल है। सत्य का अर्थ है मन, वाणी और कर्म से कपटाचरण का अभाव। – श्रीशंकराचार्य

भारतीय संस्कृति का शाश्वत प्रवाह

राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

प्रो. हिन्दी विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

भारत विश्व का अनुपम राष्ट्र है, तो निश्चित ही, इसकी संस्कृति, शिक्षा, धर्म और राष्ट्रीयता भी अद्‌भुत होगी, अपितु जिसने शासन किया, भारत के विषय में कहने के लिए उन लोगों की लेखनी लिखने को उद्यत हो गयी। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री लार्ड पामस्टसर्टन ने १९५८ ई. में कहा था – 'ये क्षेत्र जिनमें मनुष्य ने सर्वप्रथम विज्ञान और कला का अरुणोदय देखा, आज एक ऐसे लोगों के अधीन हो गये, जो (उस समय जबकि इन पूर्वी क्षेत्रों में सभ्यता चिर समृद्धि अपने शिखर पर पहुँच चुकी थी) नितान्त जंगली थे। वास्तव में यह भारत आज का नहीं, अपितु उस समय का है, जब सूर्य की प्रथम किरणें यहीं पर फैली थीं।'

विविध संस्कृतियों का देश भारत

संस्करोति इति संस्कृति – अर्थात् संस्कृति वह है, जिससे संस्करण होता है। डॉ. राजेन्द्र पाण्डेय ने लिखा है – 'संस्कृति शब्द – 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है। भारतीय संस्कृति के उपासक एवं व्याख्याता डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं – 'वास्तव में संस्कृति वह है, जो सूक्ष्म एवं स्थूल; मन एवं कर्म अध्यात्म जीवन एवं प्रत्यक्ष जीवन का कल्याण करती है। अत: संस्कृति का शाब्दिक अभिप्राय है शुद्धि या परिष्कार। यह आचरणगत सभ्यता का वह रूप है, जो मानसिक तथा आध्यात्मिक विशेषताओं से सम्पृक्त है। मनुष्य मात्र के मनसा, वाचा और कर्मणा वृत्तियों के संस्कारों से परिष्कार एवं औदात्य का निरन्तर विकास संस्कृति का ध्येय है तथा संस्कृति का मानवीय संस्कारों से घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। भारतीय संस्कृति के नामकरण व विकास के सन्दर्भ में प्रख्यात विद्वान डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर महोदय का विचार है – 'भारतीय संस्कृति, इस शब्द के स्थान पर कई लोग 'आर्य संस्कृति' 'हिन्दू संस्कृति' इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं। आर्य शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में उत्कृष्ट या उदार माना जाता है। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के विकास की व्याख्या की है – 'हिन्दू संस्कृति का उदय भारत में आज तक अन्यान्य कालखण्ड में अन्यान्य राष्ट्रों से आये हुए समाजों के सम्पर्क से हुआ है। भारत में अन्य देशों से आने वाले समाजों के द्वारा जिन आचार-विचारों का यहाँ प्रचार हुआ, उसके साथ स्थानीय आचार-विचारों का समन्वय होकर हिन्दू संस्कृति का आज का स्वरूप बना, ऐसा माना जाता है। पुन: उन्होंने आगे लिखा है – दक्षिण में आर्यन् और द्रविड़ संस्कृति का समन्वय तथा पूर्व में आर्यन और मंगोलियन संस्कृति का समन्वय हुआ। इस प्रकार वेदकाल के पूर्व से लेकर मंगोलियन समाज का आक्रमण स्थिर होने तक हिन्दू संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी।

हमारी संस्कृति का मानव के चतुष्पथों और उसके जीवन से नित्य का सम्बन्ध है। संस्कृति मानव जीवन के अमूल्य संस्कारों की संचित वह राशि है, जो जीवन को चरमोत्कर्ष तक ले जाती है। संस्कृति जीवन का समग्र ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अध्यात्म, कला-साहित्य, आचार-व्यवहार की परिपूर्णता

है। वह जीवन के पतन से उत्थान, विकास और मोक्ष की प्राप्ति का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति ही जीवन की उत्कृष्ट विचार-भावना, **सत्कृत्य अनुभव की विशिष्ट सिद्धि है**, जो जीवन की नित्यता को प्रतिक्षण दर्शाती है। यजुर्वेद में संस्कृति का सम्बन्ध कल्याण, परिष्कार, सुन्दर उन्नति से है। राष्ट्र कवि दिनकर ने संस्कृति के बारे में लिखा है – 'संसार में जो भी सर्वोत्तम बातें कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है। संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण है, दृढ़ीकरण विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। इस अर्थ में संस्कृति कुछ ऐसी वस्तु का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय है, फिर संस्कृति के कुछ पहलू भी होते हैं। भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामाजिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है।' इसी ग्रंथ में दिनकरजी ने भारतीय संस्कृति में चार क्रान्ति की ओर व्यापक ध्यान दिलाते हुए लिखा है – ''भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रान्तियों का इतिहास है। प्रथम क्रान्ति आर्यों का आर्येतर जातियों से सम्पर्क, द्वितीय क्रान्ति-महावीर और बुद्ध का स्थापित वैदिक धर्म के विरुद्ध विद्रोह, तृतीय क्रान्ति-इस्लाम धर्म का आगमन और चतुर्थ क्रान्ति-आधुनिक भारत में यूरोप का प्रवेश है, जिनके सम्पर्क में हिन्दुत्व और इस्लाम इन दोनों में नवजीवन का उन्मेष हुआ है। भारत की संस्कृति आरम्भ से ही सामाजिक रही है, उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम, देश में जहाँ भी जो हिन्दू बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामाजिक संस्कृति की विशेषता है।''

संस्कृति के निर्माण में समाज और परिवेश की जितनी भूमिका होती है, उतनी ही साहित्य की भी। पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है – 'संस्कृति को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार तथा उपकरण वहाँ का साहित्य है। संस्कृति की आत्मा की झलक साहित्य के भीतर मिलती है। संस्कृति के संदेश को जनमानस तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का वाहन होता है।' अत: भारतीय संस्कृति के तीन प्रमुख अंग माने जाते हैं, जिनसे संस्कृति आज तक सुरक्षित है, इनके नाम हैं – भारतीय ग्रंथ, तीर्थ-स्थान और महापुरुष। भारतीय संस्कृति नितान्त प्राचीन संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति, आर्य संस्कृति अथवा हिन्दू और वैदिक संस्कृति के नामों से भी जाना जाता है। इसकी गम्भीरता, सूक्ष्मता, व्यापकता और समृद्धि को आँकना असम्भव है। इस संस्कृति के निर्माता-नियामक व नियंत्रक-निर्देशक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के असीम ज्ञान-चिन्तन की मंजुल प्रभा ग्रंथों में ही संचित रही है। इन **प्रमुख ग्रन्थों** में वेद (संहिता), ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, वेदांग, स्मृति, शास्त्र, दर्शन, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, आयुर्वेद, ज्योतिर्वेद, रसशास्त्र, भाषाशास्त्र, साहित्य शास्त्र, छन्दशास्त्र, विविध-कला, त्रिपिटक, जैनागम, श्रीरामचरितमानस एवं गुरुग्रंथ साहब आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें भारतीय संस्कृति उन्नतिशील और जाग्रत बनी हुई है। महाभारत का डिमडिम घोष इसी सर्वश्रेष्ठता का सूचक है –

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।

तीर्थ स्थानों में – अयोध्या, मथुरा आदि सप्तमोक्षदा-पुरियाँ हैं –

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:।।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं –

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनं।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम्।।
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने।।
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये।।

चतुष्पीठ (चार धाम) आदि प्रमुख सांस्कृतिक एकता के संस्थापन में सहायक हैं और इस संस्कृति के अक्षुण्ण धरोहर हैं। महापुरुषों, देवी-देवताओं के संदेश, आचरण कार्य-व्यवहारों का अनुकरण जीवन को उर्ध्वगामी बनाते हैं।

मनुष्य की सहजात प्रवृत्तियों एवं प्राकृतिक शक्तियों के परिष्कार का द्योतक संस्कृति है। इसके प्रभाव से ही वह आत्मोत्थान के लिए सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं कलात्मक गतिविधियों में प्रवृत्त होता है। संस्कृति केवल धर्म, सभ्यता, ज्ञान एवं आचरण तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि भारत एक विशाल देश है और उसकी संस्कृति, सभ्यता, भौगोलिक स्थितियाँ तथा

ऐतिहासिक घटनाओं, धार्मिक विचारों तथा आदर्शों ने ही अनादिकाल से एकता-अखण्डता के सूत्र में आबद्ध रखा है। यह भारत भौगोलिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। भारत के पर्वत, पठार, समुद्र, नदियाँ, झील-सरोवर और जलवायु-भूमि आदि सभी जीवन के अंगभूत हैं। इनके बिना जीवन प्राणहीन है, ये ही जीवन के प्रेरणाभूत और प्रहरी हैं। ये नदियाँ, समुद्र, नगर, तीर्थ-स्थान सभी सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन को सतत गतिशील एवं हमारे इतिहास का बोध कराते हैं। यद्यपि भारत देश में अनेक प्राकृतिक भूखण्ड, जलवायु, जीव-जन्तु एवं वनस्पतियाँ हैं, किन्तु प्रकृति ने ही इसे एकीकृत देश बनाया है, तभी हमारे पुराणों ने गायन किया है –

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।

गंगा, यमुना आदि नदियाँ सांस्कृतिक विरासत हैं। ये भारतीय एकता, अखण्डता और एकसूत्रता के परिचायक हैं। जन-जीवन के प्राणरक्षक होने के नाते समस्त भारतीय अपने ऊपर जल डालते ही भारतवर्ष पुण्यसलिला-सरिता का सहसा मन्त्रोचार करने लगता है –

गंगे च युमने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

भारतीय संस्कृति की व्यापकता जीवन के हर मोड़ों पर बँधी धार्मिक आस्था एवं संस्कार है। यह व्यक्ति के जीवन को संस्कृतमय, सुसंस्कृति प्रदान करती है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णभेदन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, विवर्तन, उपनयन, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि, ये सोलह संस्कार संस्कृति का अभिन्न अंग बन गये हैं। इन संस्कार विधि-विधानों के द्वारा आदर्श जीवन जीने का अभ्यास भी हुआ। व्यक्ति का सांस्कृतिक जीवन रहन-सहन हेतु महल-दुर्ग, ग्राम और इसके निर्माण की कला-व्यवस्था, शिक्षा, भोजन, फल-फूल, वृक्ष, वस्त्रपरिधान, वेशभूषा, साज-सज्जाविधि, साधनादि में सांस्कृतिक रूप स्पष्ट दिखता है। इसके आर्थिक जीवन के कृषि, अनाज, सिंचाई, पशुपालन, दुग्ध-व्यापार, मुद्रा और राज्यव्यवस्था, सभा शासन तक संस्कृति की झलक जीवन से आबद्ध है।

हमारी संस्कृति मानवीय मूल्यों को अक्षुण्ण बनाने के लिए निरन्तर मानव को बोध कराती रही। कर्म तो किये जा, किन्तु निष्काम भाव से, वासनाओं की तृप्ति के लिये नहीं। यही गीता का महानतम संदेश है, कर्म की प्रधानता जीवन-मूल्य का श्रेष्ठ उपहार है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।२/४७

बृहदारण्यकोपनिषद में जीवन के वास्तविक मूल्यों को बताया गया है कि कर्म में संलग्न वह आत्मा समस्त प्राणियों का आश्रय है। यजन-पूजन से वह देवलोक का, स्वाध्याय शिक्षण से ऋषियों का, सन्तानोत्पत्ति कर्म से पितरों का, दीन-दुखी मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों को भोजन देने से मानव इन सबका आश्रय भी बन जाता है।

त्याग की भावना केवल यही संस्कृति सिखाती है और दूसरों के धन को न हड़पने एवं अपने धन को कल्याण में लगने का संदेश भी देती है –

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

भारतीय संस्कृति में जितनी गहरी अनुभूति, संवेदना और उदात्तभावना है, वैसी भूमण्डल के किसी संस्कृति में दृष्टिगोचर नहीं होती है। दृश्य-अदृश्य के कल्याण की उत्कृष्ट संकल्पना केवल भारतीय संस्कृति ही करती है।

भारतीय चिन्तन पूर्णतया जीवन के मूल्यों पर आधारित एक सूक्ष्म अन्वेषण है, जिसका जीवन में अनुकरणीय और व्यावहारिक पक्ष सकारात्मक है। पग-पग पर चिन्तन, विचार, कल्याण, गहरी-सोच, दिव्य मूल्यांकन दृष्टिगत है। सर्वत्र करुणा, दया, कल्याण, प्रेम, सहयोग एवं दृश्य-अदृश्य प्राणियों के प्रति सहानुभूति और संवदेना की विराट अनुभूति विद्यमान है। सचराचर सुखी होने की कामना का शिव-संदेश है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

इसीलिए भारतीय संस्कृति में धर्म-दर्शन और आचार-विचार के समन्वय से समरसता की स्थापना हुई है, तभी तो भारतीय दर्शन आत्मवत् चराचर मानने की शुभ संकल्पना करता है –

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

विश्व में मूलतः केवल सनातन या भारतीय संस्कृति

ही है, जो समस्त प्राणी मात्र को समान मानती है तथा पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पेड़-पौधों, सकल सचराचर सृष्टि के जीवों में दया का भाव एवं परम ब्रह्म की संज्ञा एवं चेतना की विद्यमानता को स्वीकार करती है –

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्यामीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानंविद्धि सात्त्विकम्।।

यहाँ तक कि आधुनिक भूमण्डलीकरण को मन्त्रद्रष्टा ऋषि अपना परिवार घोषित कर चुके थे, जिसका आज दार्शनिक मनीषा एवं विश्व नतमस्तक है –

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

इसी संस्कृति का ऋग्वेद आपस में हिल मिलकर रहने, मिल-जुलकर विषय विवेचन करने, परस्पर एक-दूसरे के मन को समझने का संदेश देता है –

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जनाना उपासते।।

भारतीय संस्कृति की विश्वबन्धुता सर्वत्र परिलक्षित है। यह केवल आत्मकल्याण की ही नहीं, सम्पूर्ण मानव और मानवता का हित चाहती है। अतः यह परासुव का दुरितानि अर्थात् पाप को दूर हो जाने और कल्याणकारी पदार्थ की कामना करती है। विश्व-बन्धुत्व की उदार-भावना, मानव कल्याण, मित्रता, सहायता की भावना और विश्वशान्ति इस संस्कृति में सर्वत्र हैं। यजुर्वेद का एक मन्त्र द्रष्टव्य है –

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्यहं चक्षुषा समीक्षामहे।।

भारतीय संस्कृति की मूल अभिव्यक्ति आध्यात्मिक है। अतः इसका प्राणस्वरूप आध्यात्मिक भावना है। इससे सम्पृक्त भौतिक सुख अपरिहार्य भी है। अतः सर्वतोभावेन मानवीय उत्थान के लिये समन्वयात्मक, संयमित सांसारिक सुख एवं आध्यात्मिक शान्ति को परमावश्यक माना गया है। कठोपनिषद (१.२.२) की आप्तवाक्य द्रष्टव्य है –

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

अतः पुरुषार्थों का सर्वथा संतुलन भी इसमें विद्यमान है। भारतीय संस्कृति में धर्मानुमोदित काम और अर्थ का सेवन ही प्रशस्त माना गया है –

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या
यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः
द्वयोस्तु दाक्ष्यं प्रवदन्ति मध्यं
स उत्तमो योऽभिरतस्त्रिवर्गे।।

डॉ. बी.एन. लूनिय ने संस्कृति के निर्माण में स्त्रियों को आवश्यक बताते हुए लिखा है – किसी भी सभ्यता और संस्कृति के स्तर, धारणाओं, भावनाओं आदि को समझने और उनका मूल्यांकन करने के लिए उस सभ्यता और संस्कृति में स्त्रियों की साधारण दशा उनके अधिकारों स्वत्वों और स्तर को जान लेना आवश्यक है। यदि समाज में स्त्रियों का स्तर ऊँचा है, उन्हें विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं, समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है, विभिन्न ललित कलाओं में उनकी प्रशंसनीय उपलब्धियाँ हैं, तो उस समाज की संस्कृति का स्तर श्रेष्ठ होगा।

प्राचीन भारत में महिलाओं की दशा आधुनिक युग की अपेक्षा अच्छी थी। नारी को भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। विधि-नियामक महाराज मनु ने भी उन्हें सम्मान देते हुए गौरवशाली और सर्वोच्च बताया है –

उपाध्यायानामदशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।२३।।

इसीलिए स्त्रियों को भारतीय संस्कृति में उन्होंने पूज्य घोषित किया –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

स्त्री मात्र समाज में संतानदात्री ही नहीं, अपितु उसे पति

के लिए सच्चा सखा, परामर्शदाता और साथी भी बताया गया है –

गृहणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कालाविद्यौ।।

यहाँ तक कि महाभारत माता को गुरु से भी ऊँचा स्थान दे चुका है –

गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः।।

बहुविविधिता वाले भारतीय संस्कति के निर्माण में धर्म-दर्शन, अध्यात्म, साहित्य और कला-संगीतादि का विशेष योगदान रहता है।

भारतीय संस्कृति की अजस्त्रधारा वैदिक काल से अधुनापर्यन्त प्रवहमान है। यहाँ अनेक धर्मों-सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें हिन्दू धर्म की वैदिक, पौराणिक, शाक्त-धाराएँ तथा जैन-बौद्ध सम्प्रदायों की धारा सतत प्रवाहित रही है। इसकी प्राचीनता एवं मृत्युंजयता इसके जीवन्त-नैरन्तर्य की साक्षी हैं। यूनानियों, शकों, हूणों, मुगलों और अंग्रेजों के प्रबल आक्रान्त के विरुद्ध संघर्षशील भारतीय संस्कृति जीवन्त विद्यमान है। भारतीय संस्कृति के संवाहक डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है – भारतीय संस्कृति की अमरता और अविच्छिन्नता के कारक तत्त्व हैं – सामंजस्यता, सहिष्णुता और ग्रहिष्णुता। यहाँ की सांस्कृतिक निरन्तरता का रहस्य है – सब जातियों, सब मतों, सब सम्प्रदायों और रीति-रिवाजों की समनशीलता। इस संस्कृति की धाराप्रवाहिकता और व्यापकता का मर्म है – समन्वय भावना, विरोध-समानता, अनेकता में एकता-दृष्टि तथा नाना स्तरों में एकत्व की अभिज्ञा।

वर्तमान समय में भारतीय समाज में जो विघटन, विभ्रम, हिंसा, अविश्वास, घृणा, विरोध और नैतिक अवमूल्यन आदि विद्रूपताएँ बढ़ रही हैं, उनके समाधान, शान्ति और

विभिन्न पर्वों का देश भारत

सौमनस्य की स्थापना हेतु प्राचीन भारतीय संस्कृति का सिंहावलोकन परमावश्यक हो गया है। आधुनिकता की चकाचौंध में हम अपने शिक्षा, संस्कृति, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, खान-पान एवं रहन-सहन की दृष्टि से अपने जीवन्त आदर्श भारतीय संस्कृति से प्रतिसर होते चले जा रहे हैं, यही सभी समस्याओं का मूल है। आधुनिक परिवेश की आवश्यकता है कि पुनः भारतीय संस्कृति से जुड़ें, विषयों के प्रति आकर्षण न बनायें तथा भारतीयता के प्रति अनन्य श्रद्धा-प्रेम और आस्था-विश्वास से अनुप्रेरित होकर कालजयी-अविच्छिन्न, अक्षुण्ण, निरन्तर प्रवाहित संस्कृति का पुनराख्यान करें, बलवत्ता प्रदान करें तथा नूतन चिन्तन के द्वारा इसे अग्रगामी बनायें, जिससे भारतीय संस्कृति के इतिहास में नये अध्याय का सृजन हो सके। ○○○

भगवान को चाहोगे, तो वे भी मिलेंगे, उनसे विषयसुख चाहो, तो वे भी मिलेंगे। किन्तु दोनों के लिए कुछ खटपट करनी पड़ेगी, प्रयत्न न करने से किसी की भी प्राप्ति नहीं होगी। संसार के लिए क्या कम खटपट करनी पड़ती है? स्त्री और पुत्र-कन्याओं के लिए, पैसे के लिए, विषय-सम्पत्ति के लिए, मान-यश के लिए, दिनरात आहार-निद्रा परित्याग करके देह-मन-प्राण से सभी खटपट कर रहे हैं, चिन्ता में पड़े हैं, एक क्षणभर के लिए विश्राम नहीं, कोई छूट नहीं; फिर भी जो चाहते हैं, वह मिलता नहीं और न आशा-आकांक्षा मिटती है। उसी तरह यदि भगवान के लिए खटपट कर पाते, तो भगवत्-प्राप्ति निश्चय ही होती। मणिकांचन फेंककर हम काँच में भूल रहे हैं। बार-बार धक्के और ठोकरे खा रहे हैं, फिर भी अकल ठिकाने नहीं आती। ऐसी ही माहामाया की माया है। भगवत्-प्राप्ति जैसी कठिन है, वैसी ही सरल भी है, केवल मन की गति के झुकाव को मोड़ देना आवश्यक है। पर यह वही कर सकता है, जिस पर माँ की कृपा हो। – स्वामी विरजानन्द, परमार्थ-प्रसंग

धन्य है कचरू ! धन्य है उसकी देशभक्ति !

मीनल जोशी, नागपुर

''अरे कान्हा, वो देखो .... वो .... गड़रिया।'' कल्लू एकदम से चिल्लाया।

'देखो, तो एक बालक गड़रिया मैदान में पन्द्रह-बीस भेड़ों के साथ हाथ में लाठी लेकर घूम रहा है।''

''ये यहाँ आया कैसे? राणाजी का आदेश था कि उनके क्षेत्र के मैदान में कोई भी व्यवसाय नहीं कर सकता। हमारा कोई भी कार्य शत्रु को नहीं दिखना चाहिए। फिर भी इसकी ये हिम्मत !'' कान्हा ने कहा।

''क्या इसके माता-पिता ने इसे रोका नहीं होगा...? चलो जैत्रसिंहजी को बताते हैं।'' कल्लू ने कहा और वे जैत्रसिंह जी के पास पहुँचे।

जैत्रसिंहजी सूचना पाकर अचंभित हो गये। आज तक राणाजी के आदेश की अवहेलना किसी ने नहीं की थी। आज ये कैसे हुआ? उन्होंने सेवक को भेजकर गड़रिये को उपस्थित करने का आदेश दिया। जैत्रसिंहजी ने गड़रिये से नाम पूछा। उसने निर्भयता के साथ कहा – 'कचरू'।

गड़रिया बहुत उद्दण्ड था। वह अपना अपराध मानने के लिये तैयार नहीं था। उलटा कहने लगा, ''भेड़ों को कहाँ चराने ले जाना है, इसका निर्णय करनेवाले आप कौन?'' यह सुनकर जैत्रसिंहजी क्रोधित हुए। उन्होंने गड़रिये को नजर कैद में रखने का आदेश दिया।

दूसरे दिन गड़रिये को राणाजी के सामने उपस्थित किया गया। गड़रिये ने राणाजी को प्रणाम किया और सिर झुकाकर खड़ा रहा। राणाजी उसे बार-बार पूछने लगे, ''तुमने हमारे आदेश की अवहेलना क्यों की? क्या तुम्हें हमारा आदेश पता नहीं था?

''पता था अन्नदाता। '' गड़रिये ने उत्तर दिया।

''फिर भी?''

गड़रिया चुप रहा।

''क्या तुम मेवाड़ के निवासी नहीं हो?''

''हाँ, मेवाड़ का ही निवासी हूँ।'' गड़रिये ने अभिमान के साथ उत्तर दिया।

''क्या तुम्हें मालूम नहीं हम कौन हैं?''

''अन्नदाता, आप हमारे स्वामी महाराणा प्रतापसिंह जी हैं।'' राणाजी को आदर के साथ प्रणाम करते हुए गड़रिये ने उत्तर दिया।

''फिर भी हमारे आदेश की अवहेलना तुमने की? क्या हमारा आदेश गलत था?''

''नहीं अन्नदाता।''

''फिर भी तुम भेड़ों को मैदान में चराने के लिए ले गए? क्या इस अपराध की सजा तुम्हें पता है?''

''प्राणदंड अन्नदाता।'' गड़रिये ने निर्भयता से उत्तर दिया। गड़रिये के चेहरे पर न पश्चात्ताप की भावना थी, न दया की याचना। वह अपने मत पर अडिग था।

''क्या तुम्हें लगता है कि हमें तुम्हें क्षमा करनी चाहिए?'' राणाजी ने बालक कचरू पर दृष्टि रखते हुए कहा।

''नहीं अन्नदाता। बल्कि इसका उलटा मुझे प्राणदण्ड देना ही उचित होगा।'' कचरू गड़रिये ने राणाजी को आँखों से अभिवादन करते हुए आत्मविश्वास के साथ कहा।

राणाजी ने बालक को सिर से पाँव तक निहारा और भामाशाहजी की ओर मुड़कर कहा, ''निश्चित ही इसने जान-बूझकर अपराध किया है। इस बालक की आयु और इसके पहले अपराध को देखते हुए हम इसे क्षमा करते हैं। इसे आप मुक्त कर दीजिए।''

यह सुनकर बालक की आँखों में आँसू आ गए। वह

राणाजी के चरणों में गिरकर रो-रोकर आर्त्तता से कहने लगा, ''अन्नदाता ! ऐसा मत कीजिए। अपराधी को क्षमा नहीं, कठोर दण्ड दीजिए, कठोर दण्ड दीजिए। मृत्युदण्ड देकर मेरा शव गाँव की सीमा पर लटका दीजिए। गाँव की सीमा पर लटका दीजिए, अन्नदाता!'' बालक के ये शब्द सुनकर सभी विस्मित हो गए। बालक जोर-जोर से रोने लगा। गिड़गिड़ाने लगा। राणाजी ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे शान्त किया और उससे पूछा, ''बताओ ! बेटा शान्ति से बताओ ! ये सब क्या है? सजा न मिलने पर तुम्हें इतना दुख क्यों हो रहा है?''

महाराणा प्रताप सिंह

बालक कचरू अपने आप को थोड़ा संभालते हुए अटक-अटक कर कहने लगा, अन्नदाता, आपने सारी बस्तियों को उजाड़ने का आदेश दिया था। आपके आदेशों का पालन सबने किया। परन्तु दूसरे प्रान्त से आये हुए सौदागर और व्यापारी लोग कहने लगे। ''कुछ नहीं होता, व्यापार करो, खेती करो, धन कमाओ। तुर्कों से हमें अधिक धन मिलेगा।''

बस्ती के लोगों ने आपके आदेश की याद दिलायी। सजा होगी यह भी बताया। तब वे लोग बस्तीवालों को कहने लगे, ''कुछ नहीं होता। आदेश निकलते हैं। किन्तु अपराधी पकड़े नहीं जाते। पकड़े गए तो, राणाजी से क्षमा माँग लेंगे। सजा नहीं होगी और इस धन से राणाजी की हम मदद करेंगे। वे बेचारे एक वन से दूसरे वन घूम रहे हैं।''

बस्ती के लोगों ने उनकी बात नहीं मानी। किन्तु मेरे पिताजी को डर लगने लगा कि उनके बार-बार कहने से बस्ती के लोगों ने आदेश तोड़ने का निश्चय किया, तो राणाजी के कार्य में बाधा आएगी, विघ्न होगा। उन्होंने माँ के पास शंका जतायी। माँ ने मुझे कहा, ''कचरू तुम जाओ। राणाजी का आदेश भंग करो। वे तुम्हें मृत्युदण्ड देंगे। तुम्हारा शव सीमा पर लटकाएँगे।'' पिताजी ने कहा, ''वह छोटा है। मैं जाता हूँ।'' तब माँ ने कहा, ''छोटा है, इसलिए उसे भेजना है। लोग समझेंगे अपराधी कितना भी छोटा-बड़ा हो उसे सजा मिलती है।'' माँ-पिताजी की आज्ञा से मैंने यह अपराध किया। अन्नदाता, आप मुझे कठोर दण्ड दीजिए। ''माँ-पिताजी ने मुझे समझाया है कि क्षमा नहीं माँगना। अन्नदाता, मेरे अपराध का उद्देश्य कितना भी अच्छा हो, अपराध, अपराध होता है। आप मुझे दण्ड दीजिए।''

कचरू की बातें सुनकर सब नि:शब्द हो गए। उसकी देशभक्ति, स्वामीभक्ति, उसके माँ-पिताजी के स्वदेश प्रेम ने सबके अन्त:करण को हिला दिया। राणाजी धर्मसंकट में पड़ गए। आदेश की अवहेलना करने के पीछे कचरू का उद्देश्य जानकर वे उसे सजा नहीं दे सकते थे। परन्तु अपराधी को सजा नहीं देकर उसके माँ-पिताजी की देशभक्ति की भावना का अनादर भी नहीं किया जा सकता था। इधर कचरू बार-बार अपराधी को सजा देने की प्रार्थना करने लगा।

अन्तत: राणाजी ने कर्तव्य-कठोर मन से और दुखी अन्त:करण से कचरू को कठोर सजा देने का निर्णय सुनाया।

धन्य है कचरू ! धन्य है उसके माता-पिता ! धन्य है राणाजी ! धन्य है उन सबका देशप्रेम !

हम ऐसे देश के वासी हैं जहाँ के सामान्य नागरिकों का अन्त:करण देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। जहाँ एक छोटा बालक देशहित के लिये बलिदान देने के लिए तत्पर है। क्या हमारा भी कुछ कर्तव्य है? अगर हाँ, तो कोई भी कार्य करते समय अपने देश और देशबन्धुओं के बारे में अवश्य विचार कीजिए। स्वार्थ त्यागकर अपने देश के पुनरुत्थान में अपना सक्रिय सहयोग दीजिए। ○○○

सन्दर्भ - प्रणवीर महाराणाप्रताप, लेखिका – डॉ. भारती सुदामे

असत्य भाषण के पश्चात् मनुष्य यह सोचकर दुखी होता है कि वह झूठ बोलकर भी सफल नहीं हो सका। वह असत्य भाषण से पूर्व इसलिए व्याकुल रहता है कि वह दूसरे को ठगने का संकल्प करता है। वह इसलिए भी दुखी रहता है कि कहीं कोई उसके असत्य को जान न ले। इस प्रकार असत्य व्यवहार का अन्त दुखदायी ही होता है। इसी तरह विषयों में अतृप्त होकर वह चोरी करता हुआ दुखी और आश्रयहीन हो जाता है। — भगवान महावीर

सारगाछी की स्मृतियाँ (११४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

हम पुनः अपनी डायरी के पृष्ठों का अनुसरण करते हैं।

काशी में एक दिन भोर में प्रेमेश महाराज पेरामुब्लेटर पर बैठकर भ्रमण कर रहे हैं और साथ ही गीता आदि के पाठ सुन रहे हैं। एक सज्जन आए और बड़े श्रद्धाभाव से महाराज को प्रणाम करके अतीव विनम्रता से धीरे-धीरे चले गए। उन सज्जन के चले जाते ही महाराज ने कहा, ''वे सज्जन एक उच्च पद पर हैं।'' सेवक ने तुरन्त पूछा, ''आपने कैसे समझ लिया?'' महाराज बोले ''उन सज्जन की आँख के पास एक चिह्न है, उससे समझा जा सकता है।''

उस दिन अपराह्न में कार्यालय में जाते समय मैंने सुना कि सुबह डॉ. त्रिगुणा सेन आए थे और कुछ पुस्तकें खरीदकर ले गए थे। त्रिगुणा सेन उस समय कुलपति थे और बाद में भारत के शिक्षामंत्री हुए।

नाटे कद के बलिष्ठ और कर्मठ उपेन महाराज के पास सेवक को प्रायः जाना पड़ता था। वे सम्भवतः इनडोर (अन्तरंग चिकित्सा विभाग) में काम करते थे। वे हमेशा हँसमुख और हमदर्द स्वभाव के थे। सेवक के जाने पर वे सब काम छोड़कर बातें करते। वे कहते थे, ''सेवक के पास नहीं रहने पर महाराज को असुविधा होगी।''

एक दिन सुबह किसी कार्यवश रसोई घर की ओर जाते समय देखा कि उपेन महाराज चबूतरे पर पेट के बल लेटे पड़े हैं और कुछ साधु लोग आपस में कुछ परामर्श कर रहे हैं। बाद में पता चला कि दोतल्ले जैसे एक ऊँचे स्थान से एक बिल्ली को भगाते समय उनका पैर फिसल गया। उन्हें स्वस्थ होने में लगभग दो वर्ष लग गए। आश्चर्य की बात यह है कि स्वस्थ होकर वे फिर से पूरे उद्यम से सेवाश्रम के कार्यों में लग गए।

उमेश महाराज सह-सचिव थे। वे पुष्पों के प्रेमी थे। आऊटडोर (बहिरंग चिकित्सा विभाग) के कार्यों का पर्यवेक्षण करते थे। कोई विशेष भोजन-व्यंजन आदि बनने पर उमेश महाराज को वह अवश्य ही चाहिए। वे बीच-बीच में आकर खोज-खबर लेते रहते थे कि महाराज को कोई असुविधा तो नहीं है।

यद्यपि बहुत प्रासंगिक घटना नहीं है, तथापि याद आ जाने के कारण कहने से स्वयं को रोक नहीं पा रहा हूँ। बलाई महाराज खूब अच्छा गाते थे, किन्तु उनमें बाह्य शौचाचार बहुत था। एक दिन पत्र देने चपरासी आया था। उन्होंने अपने हाथ से पत्र को स्पर्श नहीं किया और बोले, ''पत्र को फर्श पर फेंककर चले जाओ।'' चपरासी फेंककर चला गया। तदुपरान्त उन्होंने उस पत्र पर पर्याप्त गंगाजल छिड़क दिया, जिसके कारण पत्र की लिखावट प्रायः धुल गई। फिर वे उस पत्र को लेकर कई लोगों को दिखाकर पढ़ने के लिये कहते थे। यह घटना काशी की नहीं है, यह सारगाछी में घटी थी। बड़े कठोर साधनप्रिय साधु थे, नंगे पैर चलते थे और स्वल्पमात्र वस्त्रादि (कौपीन आदि) ही पहनते थे। स्नान के लिए वे हैण्डपाइप के नीचे जाते तो थे, किन्तु दूसरे किसी के द्वारा पाइप चलाने या जल स्पर्श करने पर वे उसे ग्रहण नहीं करते थे। इसीलिए उन्होंने इस सेवक को हटा दिया। सेवक ने देखा कि वे पाइप चलाकर पहले उसे खूब धो रहे थे। तब सेवक ने कहा, ''महाराज! यह हैण्डपाइप तो अशुद्ध है और आपने उसे हाथ भी लगा दिया।'' अचानक उन्होंने बाल्टी उठाकर उसमें से कुछ जल सेवक की ओर डाल दिया। सेवक भी हँसते-हँसते वहाँ से भाग चला।

२३-०४-१९६४, बृहस्पतिवार

कल सायंकाल खूब वर्षा हुई है। प्रचण्ड गर्मी के बाद समस्त प्रकृति मानो स्नान करके अभी-अभी सोकर उठी है। प्रातः काल ५.४५ बजे महाराज भ्रमण कर रहे हैं।

महाराज – प्रकृति की यह जो अपूर्व शोभा है, इसे देखकर मैं अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ। भावावेश हो रहा है। किसी भी सूक्ष्म विषय में मन जाने से कष्ट होता है। जिनका मन सूक्ष्म है, जो प्राकृतिक दृश्य, कविता अदि

सूक्ष्म विषयों में रस का अनुभव करते हैं, उनके बारे में समझना चाहिए कि वे सतोगुणी हैं और उसके पीछे उसी चित् (चैतन्य) का प्रकाश है। कोई-कोई मनुष्य ऐसे चलता है, मानो नृत्य करते हुए चल रहा हो। जो सुन्दर होता है, उसका सभी कुछ सुन्दर होता है, वह सभी अवस्थाओं में सुन्दर होता है, सभी प्रकार के परिधान या पोशाक में सुन्दर होता है। किसी-किसी में पैर, हाथों के नाखून, उँगलियों की बनावट, आँखें और मुख की हँसी रहती है। मन्टू के मुख पर हँसी और पैर का अंगूठा उलटा है। बहुत सुन्दर है। ठाकुर के हाथों के नखों, पैर के अंगूठे और आँखों का हास्य देखो – अद्भुत !

मनुष्य हमेशा चैतन्य में स्वयं को प्रसारित करना चाहता है। इसीलिए तो यौवन में काम का वेग, सृजन की उन्मत्तता रहती है, अपने को प्रसारित करके स्वयं का भोग करना चाहता है। यह जो आदमी पक्षी लेकर जा रहा है, उसकी क्या दशा है ! देखो न, मनुष्य को लेकर रहता, तो मनुष्य के गुण-दोष प्राप्त करता। एक पक्षी के लेकर रहने से कितनी निम्नतर योनियों के संस्कार तैयार कर रहा है। यह जो एक दूसरा आदमी है, उसे देखो, छोटे बच्चे को अपनी साइकिल पर बैठाकर ले जा रहा है, लगता है उसी का बच्चा है। उस दिन तुमने देखा था न – एक आदमी कुत्ते को लेकर घूम रहा था और तुम मेरे साथी हो। फिर कोई केवल ठाकुर को लेकर है। लगता है, उदय महाराज वैसे ही हैं, उनका मुख मण्डल देखो न ! कैसा प्रशान्त है ! उनके जीवन में कोई उत्तेजना कभी दिखाई पड़ती है कि नहीं, उस बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

क्या इस जगत् की एक बात भी सुखदायक नहीं है? जिसके बारे में सुनता हूँ, वही त्रिताप में है। जो सुख जैसा प्रतीत होता है, वह भी दुख का ही दूसरा पहलू है। सुख का समय बीतते ही दुख आता है। मेरे जैसे लोग जो केवल विचार ही करते हैं, ध्यानाभ्यास नहीं करते, उनके लिए जगत में रह पाना बड़ा ही कष्टकर है। गीता का यह एक श्लोक है – **बाह्य स्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।**

एक श्लोक की बात ही समस्त गीता में है, समग्र अध्यात्मशास्त्र में यही कहा गया है – वासना त्याग ! वासना त्याग !

इस बीच जटिया बाबा (वीरेश्वर बाबू) सूर्य प्रणाम करने हेतु मुख हिला-डुला रहे थे।

महाराज – यह जो मुख को घुमाना-फिराना है, यह एक मानसिक कार्य है। ये लोग मुक्ति भी चाहते हैं और फिर जो धर्म-साधना कर रहे हैं, उसे सभी जानें, यह भी चाहते हैं। भोग और अपवर्ग (मोक्ष) एक साथ चाहते हैं।

इन लोगों की बात क्या कहूँ ! हमलोग भी तो यही चाहते हैं। सच कहता हूँ, जब मुझे महापुरुष कहकर कोई मेरी प्रशंसा करता है, तो मन में बड़ी पीड़ा होती है। देखो न, मुझे स्वयं अवतार (श्रीमाँ) ने बैठकर दीक्षा दी है। उनके हाथ में जीवों की मुक्ति की चाबी है। जब चाहें, मुक्ति दे सकती थीं। यदि मैं एक वर्ष तक निष्ठापूर्वक जप करता, तो मेरी मुक्ति मेरे करतलगत होती। किन्तु बहादुरी किया, वाहवाही पाई, अन्दर ही अन्दर इसका शौक था, इसीलिए माँ ने दिया है।

मैं इसके पूर्व जप करना पसन्द नहीं करता था, सोचता था – क्या बैठे-बैठे माला फेरना! अब समझ पा रहा हूँ – जप करने से मन की कितनी सुरक्षा होती है और वृद्धावस्था में जप से कितना मन व्यस्त रहता है। गुरु से दीक्षा प्राप्त करके भी जप नहीं कर सकता। एक बार केवल इष्ट मंत्र स्मरण कर लेता हूँ। अधिक करने पर भावावेश से छाती फटने लगती है।

यह जो आदमी गया है, उसका मुख मानो खिड़की है। भीतर देखने पर मन का अधिकांश देखा जा सकता है।

अपूर्वानन्द महाराज द्वारा 'पापेते हयेछि भारी' नामक गान के पद में परिवर्तन का अनुरोध करने पर प्रेमेश महाराज बोले – इसके स्थान पर 'त्रितापे जीवन भारी' करना ठीक है।'' अपूर्वानन्द महाराज ने इसके लिए मुक्तकण्ठ से प्रशंसा और कृतज्ञता-ज्ञापन किया।

ललित महाराज बाजार करने गए थे –

महाराज – कल आँधी-वर्षा में तुम बाजार में भींगा नहीं तो?

बुद्ध महाराज से बोले – ''विश्वनाथजी का अतिथि होकर आया हूँ न, इसीलिए इस बार उतनी गर्मी नहीं रहेगी !''

कृष्णचन्द्र नामक एक ब्रह्मचारी ने संशयग्रस्त होकर अनेक प्रश्न किए हैं।

महाराज – किन्तु इतनी बाधाओं को हटाकर ठाकुर के पास आ गया है। इधर का ही व्यक्ति है, बी.ए. पास है, फिर ठाकुर को स्वीकार करना ! क्या सहज बात है? इच्छा तो हुई थी कि लिखूँ – ठाकुर का रूप, लीला और तत्त्व लेकर मत्त रहने से सभी संशय मिट जाएँगे। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व-चिन्तन (२)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

प्रभु पर विश्वास ही जीव की साधना : रामचरितमानस का उदाहरण

कोई साधक यदि तुलसीदासजी से पूछे कि क्या भगवान के चरणों में अनुराग उत्पन्न करने के लिए भी कोई साधना है? तो वे कहेंगे कि हाँ है –

होइ बिबेकु मोहभ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा।। २/९२/५

राम के चरणों में अनुराग तभी होता है, जब मनुष्य के मोह और भ्रम छूट जाते हैं। संसार में जिस प्रकार का अनुराग हमारा है, वैसा अनुराग तो भगवान के चरणों के लिए उपजता नहीं। न उपजने का कारण यह है कि मोह और भ्रम पर्दे की तरह बाधक-तत्त्व के रूप में आकर हमारे सामने खड़े हो जाते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, पहले मोह और भ्रम को भगाओ। ये जब तुम्हारे जीवन से निकल जाएँगे, तब राम के चरणों में तुम्हारा अनुराग होगा। चूँकि मोह है इसीलिए संसार के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। भ्रम है इसीलिए हम संसार को सत्य समझते हैं। भ्रम के कारण ही इस संसार की सत्यता हमारे समक्ष भासती है। वास्तव में संसार तो अनित्य है। परन्तु भ्रम के कारण वह हमको नित्य मालूम होता है। इसी भ्रम के कारण मोह उपज जाता है। भ्रम और मोह को भगा देने पर राम के चरणों में अनुराग होगा। साधक पूछता है – अब इस मोह और भ्रम को हटाया कैसे जाए? गोस्वामीजी कहते हैं, विवेक को अपने जीवन में लाओ, जिससे ये मोह और भ्रम अपने आप दूर हो जाएँगे। उदाहरणार्थ – मान लो हम कहीं जा रहे हों और रास्ते में हमें साँप दिखाई दे, तो हमारे मन में डर उत्पन्न हो जाता है।

हम डर से चिल्लाएँगे, भागने का प्रयास करेंगे और चाहेंगे कि उस जगह के अँधेरे को मिटाने के लिए कोई प्रकाश ले आए। हमारी पुकार सुनकर लोग दौड़ आते हैं। साथ में लालटेन और लाठी भी ले आते हैं। जैसे ही उन उपकरणों को लेकर हम साँप को मारने के लिए उद्यत होते हैं, तो देखते हैं कि वह साँप तो नहीं एक रस्सी है। अब उस रस्सी में हमको साँप का भ्रम हुआ। यह भ्रम अज्ञान के कारण हुआ। इस भ्रम के कारण हमें मोह (डर) हो गया। अपने प्राणों के प्रति मोह भी हो गया। हम भागने लगे। इसका अर्थ हुआ कि जीवन में ये जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे सारे दोष भ्रम के कारण ही उत्पन्न होते हैं। भ्रम में से मोह जन्म लेता है। गोस्वामीजी कहते हैं, इस अज्ञान को दूर करने का उपाय है ज्ञान। रस्सी में साँप दिखने का जो अज्ञान है उसे दूर करने का उपाय यही है कि ज्ञान को ले आएँ, जान लें कि साँप है, रस्सी नहीं है। ऐसा बोध हो जाने पर भ्रम चला जाता है और जब भ्रम ही चला गया, डर दूर हो गया, तो मोह भी मिट जाता है। डर चला जाता है। अब साधक पूछे कि इस विवेक को पाने के लिए भी क्या कोई साधना करनी पड़ती है? तो गोस्वामीजी कहते हैं – **बिनु सतसंग बिबेक न होई।** बिना सत्संग के विवेक हो नहीं सकता। अब इस सत्संग को पाने के लिए भी क्या कोई साधना करनी पड़ती है? जिस तरह हमको अनुराग पाने के लिए मोह और भ्रम को भगाने की साधना करनी पड़ती है। कहते हैं – **राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।। (१/२/७)** – रामजी की कृपा के बिना यह सत्संग सुलभ नहीं होता। अर्थात् सब कुछ आकर रामजी की कृपा पर ही केन्द्रित हो गया। रामजी की कृपा हो, तो सत्संग मिले। सत्संग मिले तो विवेक हो। विवेक आए तो

मोह और भ्रम भागें। मोह और भ्रम से छुटकारा हो और अनुराग हो जाए, तो वे मिलें। साधना की कसौटी अन्त में आकर वहाँ पहुँचती है कि रामकृपा से हमको सत्संग मिले।

अब इस रामजी की कृपा को पाने के लिए भी कोई साधना करनी पड़ती है या वह अनायास ही मिल जाती है? भगवान राम के मन में क्या पक्षपात है कि किसी पर कृपा करके उसको सत्संग देते हैं और किसी पर उनकी कृपा नहीं होती, तो उसे सत्संग नहीं मिलता? भगवान राम की कृपा मिले कैसे? गोस्वामीजी बताते हैं –

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु।। ७/९०/क

बिना विश्वास के भक्ति होती नहीं और बिना भक्ति के रामजी द्रवित नहीं होते। रामजी के द्रवित हुए बिना उनकी कृपा नहीं होती। अर्थात् यह जो विश्वास है, यही साधक का सम्बल है। इसी को साधक की साधना कहते हैं। बस इतना ही कह सके कि मैं तुम पर सोलहों आने विश्वास करता हूँ, प्रभो ! तुम मंगलमय हो, तुम कल्याणकारी हो। हर परिस्थिति में उनकी ही इच्छा देखें, उनकी कृपा ही देखें, तो यह जीव का पुरुषार्थ है। जीव यह नहीं कर पाता। हम कर नहीं पाते। अच्छी परिस्थितियों में तो हम बड़े प्रसन्न रहते हैं, परन्तु जब जीवन में विषम या प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं, तो हम दु:खित हो जाते हैं। हम ईश्वर को कोसते हैं। इसका अर्थ है कि ईश्वर के चरणों में हमारा विश्वास जमा नहीं। उन पर विश्वास का जमना तब माना जाएगा, जब परिस्थितियाँ चाहे अनुकूल हों अथवा प्रतिकूल, हर परिस्थिति में हमारा विश्वास उनके चरणों में बना रहे।

श्रीरामकृष्ण वाले उदाहरण में बच्चे को विश्वास है कि खिलौने और मिठाई से भूलकर वह रोना बन्द नहीं करेगा, तो माँ अवश्य उसे गोद में उठा लेगी। माँ के हाथों में वह पूर्णतया सुरक्षित है, यह भी वह जानता है। पूरे विश्वास के साथ बच्चा माँ की गोद में जाने के लिए रोता है, मचलता है और माँ बाध्य हो जाती है उसको गोद में उठाने के लिए। यह विश्वास ही बच्चे का पुरुषार्थ है, उसकी साधना है। इसी प्रकार का विश्वास जब हमारे जीवन में भगवान के लिए आता है, ऐसा विश्वास कि जो कुछ भी हो रहा है, वह उनकी इच्छा से ही हो रहा है और वे सब कुछ करने में समर्थ हैं। वे जो भी करते हैं, उसमें हमारा मंगल ही छिपा है, ऐसा विश्वास जब हो जाता है, तब समझ लीजिए कि ईश्वर की कृपा को पाने की साधना पूर्ण हुई। यह जीव की साधना है। जीव का पुरुषार्थ है। उससे भगवान की कृपा मिलती है, सत्संग के रूप में। अच्छे लोगों का, अच्छी बातों का संग वे ही करा देते हैं और उसके बाद की शृंखला स्वत: ही जुड़ती जाती है। अन्त में राम मिल जाते हैं। गीता का ग्यारहवाँ अध्याय पढ़ने पर हम पाते हैं, मानो उससे पहले अर्जुन इसी विश्वास को पाने की साधना कर रहा था। उससे पहले उसके जीवन में पूरी तरह से वह विश्वास उतरा नहीं था। दसवाँ अध्याय पूरे होने पर हमें मालूम होता है कि अर्जुन पूरी तरह से भगवान पर विश्वास करता है। ग्यारहवें अध्याय में पहुँचकर इसका प्रत्यक्ष निदर्शन है। भगवान की अर्जुन पर कृपा हुई और उन्होंने उसे अपने दिव्य रूप के दर्शन कराए।

ग्यारहवें अध्याय के प्रारम्भ के चार श्लोकों में अर्जुन का यह विश्वास प्रगट होता है। अर्जुन कहता है –

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।१।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन ने कहा) मदनुग्रहाय (मुझ पर कृपा कर) त्वया यत् अध्यात्मसंज्ञितम् (आपने जो अध्यात्मविषयक) वच: उक्तम् (उपदेश दिया) परमम् गुह्यम् (वह परम गोपनीय था) तेन मम अयम् (उससे मेरा यह) मोह: विगत: (अज्ञान नष्ट हो गया)।

''मुझ पर कृपा कर आपने जो अध्यात्मविषयक उपदेश दिया, वह परम गोपनीय था, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया।''

अर्जुन कहता है – हे भगवन् ! आपने मुझ पर कृपा करके मुझे जो उपदेश प्रदान किया, वह बहुत ही रहस्यात्मक था। स्वयं भगवान ने भी कहा है कि यह जो अत्यन्त गुह्यतम राजविद्या का उपदेश मैं तुझे प्रदान कर रहा हूँ अर्जुन ! इसे मैंने विवस्वान से कहा था। विवस्वान ने मनु से कहा, मनु ने इक्ष्वाकु को बताया। ऐसी इस ज्ञान की परम्परा रही है।

अध्यात्म और विज्ञान के उद्देश्य पूर्णतया विपरीत

अर्जुन कहता है – भगवन् ! आपने जो कुछ भी बताया, वह परम सत्य है, ऐसा मैं मानता हूँ। आपने जो मुझे बताई वह अध्यात्म विद्या है – भीतर की ओर जाने का उपाय है। बाहर की विद्या में, विज्ञान में हम कितने चमत्कार देखते हैं। मनुष्य अन्तरिक्ष में चला जाता है और भी बहुत कुछ आज का मनुष्य विज्ञान के क्षेत्र में अर्जित कर रहा है। पर यह जो अध्यात्म विद्या है, भीतर जाने की विद्या है, यह बड़ी कठिन

विद्या है। लिंकन बार्नेट नाम के एक वैज्ञानिक हैं। वे विज्ञान पर बड़े अच्छे लेख लिखते हैं। उनका झुकाव अध्यात्म की ओर भी है। उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है – द यूनिवर्स एण्ड एलबर्ट आइन्स्टीन। उस पुस्तक में उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में हुए आविष्कारों का वर्णन किया है और लिखा है कि हम प्रकृति के रहस्य को विज्ञान की सहायता से खोलने तो जाते हैं और रहस्य का पर्दा हटता-सा भी दिखाई देता है, पर एक विचित्र बात यह है कि प्रकृति में बाहर की ओर हम जितनी भी ऊँचाई या गहराई में पैठते हैं, उतने ही अपने आप से दूर होते जाते हैं। मनुष्य जितना बहिर्मुख हो रहा है, उतना ही अपने आप से दूर हटता जा रहा है। वे मनुष्य के समक्ष एक सम्भावना रखते हैं कि मनुष्य अपने भीतर जाकर अपने आपको लाँघकर जा सकता है। लाँघ जाने का तरीका यह है कि यह जो मनुष्य है, वह केवल शरीर ही तो नहीं है। वह शरीर और मन दोनों की ज्योति है। लिंकन बार्नेट का कहना है कि जब मनुष्य शरीर और मन से परे हो जाए, तो सोच लीजिए उसने अपने आपको लाँघ लिया। अपने आपको मनुष्य लाँघ सकता है और अपने आपको लाँघ जाने के बाद प्रत्यक्ष धीरे-धीरे जब अपने भीतर प्रवेश करता है, तो देखता है वहाँ पर तो मन के कई स्तर हैं। जैसे हवा के कई स्तर होते हैं, अन्तरिक्ष के कई स्तर होते हैं, जिनको भेदकर मनुष्य चन्द्रमा की परिधि में पहुँचता है और भी कितने ही स्तर हैं, जिन्हें हम बाहर जगत में देखते हैं। समस्त स्तरों को पार करके मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर पाँव रखकर लौट आया। भीतर की ओर यात्रा करने में भी इसी भाँति कई प्रकार के मन के स्तर हैं ! मनुष्य का मन एकाग्र होकर जैसे-जैसे भीतर की ओर प्रवेश करता जाता है, वैसे-वैसे वही एकाग्र मन अपनी परतों को, अपने स्तरों को पार करता जाता है। फिर एक ऐसी भी अवस्था आती है, जब वह अपनी सारी सीमाओं को लाँघकर पार हो जाता है। यही अपने यहाँ निर्विकल्प समाधि अवस्था के रूप में निरूपित हुआ। इसी को कहते हैं अमनी मन।

कठोपनिषद् पढ़ने पर पता चलता है कि किस प्रकार साधक अपने मन को एकाग्र करता है। बाहरी विषयों की ओर से खींचकर उसे समेटता है और समेट लेने के बाद उसके ऊपर अपने ध्यान को एकाग्र करता है। एक श्लोक आता है –

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।
कठोपनिषद २.१.१।।

एक ऋषि थे। बहुत खोज करने के बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि जीवन का जो सत्य है, वह बाहर दिखाई नहीं देता। इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी पकड़ में आएगा, वह क्षणिक होगा, नश्वर होगा, शाश्वत नहीं होगा। वह असीम नहीं होगा। इन्द्रियाँ तो सीमित हैं। सीमित के क्षेत्र में असीम आ नहीं सकता। परन्तु यह असीम तत्त्व है, उसको देख सकने का कोई उपाय तो अवश्य होना चाहिए। ऋषि बड़ा खोजी था। वैज्ञानिक जैसी बुद्धिवाला था। खोज करने पर वह उस असीम तत्त्व को देख पाया। कैसे देखा? **आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्** – उसने अपनी आखों को बाहर के लिए बन्द कर लिया, कानों को बाहर के शब्दों के लिए बन्द कर लिया और अन्त में अपने भीतर की ओर गहराई में पहुँचकर परम तत्त्व को देखने में समर्थ हुआ। इसी को भीतर जाने की विद्या – अध्यात्मविद्या के नाम से जाना जाता है।

गीता में यहाँ अर्जुन कह रहा है – **मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्** – आपने मुझ पर बड़ी कृपा की भगवन्! यह अध्यात्मविद्या है, इसका ज्ञान प्राय: मनुष्य को हुआ नहीं करता। इसके प्रवचनकर्ता भी बिरले ही होते हैं। आपने मुझ पर कृपा करके ऐसा यह परमगुह्य अध्यात्मज्ञान मुझे दिया, अपने भीतर जाने की विधा दिखाई। आपने मुझे जो यह उपदेश प्रदान किया, उससे मेरा मोह चला गया। किसी रोगी को दवा दी जाए, तो दवा का पहला काम है रोग का निवारण और दूसरा काम है स्वास्थ्य-लाभ। औषधि का लक्ष्य केवल रोग दूर करना ही नहीं स्वस्थ्य करना भी है। कृष्ण की दी हुई औषधि से अर्जुन का मोहनाश तो हो गया। यह तो हुआ रोग निवारण। परन्तु स्वास्थ्य-लाभ अर्थात् विराट् का दर्शन अभी नहीं हुआ। अर्जुन के 'करिष्ये वचनं तव' कह देने से स्वास्थ्य-लाभ की शुरुआत तो हुई, पर अभी वह काम अधूरा है। यदि यहीं अर्जुन को स्वास्थ्य-लाभ भी हो गया होता, तो गीता यहीं समाप्त हो जाती। उसमें १८ अध्याय न होते। भगवान कहते हैं – अर्जुन, तेरे प्रति मैंने जो कहा, उसे तूने ध्यान से सुना। इतने ध्यान से सुनने के बाद तेरे चित्त में आया हुआ मोह क्या दूर हुआ? अर्जुन ने बताया –

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

ईश्वर के चरणों में ही स्थायी सुख है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

संसार में कुछ भी स्थाई नहीं है, सब कुछ परिवर्तनशील है, किन्तु हमारे भीतर जो आत्मा है, वह बदलता नहीं है। वह अखण्ड सत्ता है। उसका न जन्म होता है, न मरण। वह सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है, आकाशवत् है। हम उस भगवान को भूल जाते हैं, तब हमें दुख होता है। हम सबको २४ घंटे में भगवान को कभी नहीं भूलना है। भगवान के नाम-जप से मन प्रसन्न रहता है। भगवान के नाम-जप से मन आनन्द में रहता है। हमारी आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसका अच्छा लगना, मन से सम्बन्धित है। मन को हमेशा अच्छा लगना, इसी का नाम मुक्ति है। एक बार मन भगवान में प्रतिष्ठित हो जाये, उसी का नाम समाधि है। ये बात सोचने से भी अच्छी लगती है। इसका रोज चिन्तन होता रहे। मन इन्द्रियों के संयोग से होनेवाले कर्म भी नहीं रहेंगे। जब मन में भगवान की दृढ़ धारणा हो जायेगी, गुरु की कृपा हो जायेगी, तब एक क्षण में भगवान का दर्शन हो जायेगा। इसीलिए गुरु ने जो साधना बतायी है, उसे करते रहना चाहिए। आचार्यों ने कहा है, जो तुम विचार करोगे, वैसे बन जाओगे। इसलिए सतत जप करने का अभ्यास डालना चाहिए। ये सबसे अच्छा उपाय है। कहा गया है – जपात् सिद्धिः। सिद्धि याने संसार को भूलना और ईश्वर का चिन्तन। ईश्वर हमेशा वर्तमान में होता है। इसका अस्तित्व हमेशा है। सब जगह है। ऐसा समझकर उसकी उपस्थिति का सर्वत्र बोध करें। वह अनिर्वचनीय है। साधना की दृष्टि से उसके हजारों नाम-रूप हैं। अनुभूति की दृष्टि से अनिर्वचनीय है। ईश्वर कैसा है, जैसा हम सोचते हैं।

जपात् सिद्धिः यानि हमारा मन भगवान के चरणों में लीन हो जायेगा, स्थिर हो जायेगा। मन केवल ईश्वर में स्थित रहने पर ही निर्वासना होता है। उसके बाद जो भी इच्छा रहेगी, वह वासना नहीं रहेगी। तब संसार न सुख देगा, न दुख देगा। उसके ऊपर जो सुख है, वह केवल आनन्द है। भक्ति में स्थित रहे इसके बिना स्थायी सुख कोई नहीं है। इसके लिए मन को उनके चरणों में प्रतिष्ठित रखने का प्रयत्न करो। जगत् का सब काम करना, लेकिन मन भगवान के चरणों में ही रखना। ईश्वर अपरिवर्तनशील है, उसमें मन स्थिर रहेगा, तो आनन्द की अनुभूति होगी।

इन्द्रियों का निग्रह नहीं होने से ईश्वर-दर्शन नहीं हो सकता। अतः इन्द्रियों के दासत्व से बचो कि वे तुम्हें विवश न करें। जब तक हमारा सुख-दुख व्यक्ति-वस्तु पर आधारित है, तब तक हमें कभी भी सुख नहीं मिल सकता। बड़ा से बड़ा सुख, बड़ा से बड़ा दुख भी भगवान के नाम स्मरण से नहीं रहेगा। सब चला जायेगा। रहेगा केवल ईश्वर – हमारी आत्मा। आनन्द सदा के लिए रहेगा। इसको सोचने से कठिनाइयों में सहायता मिलती है। ये छोटे-छोटे सूत्र जीवन में बहुत सहायक होते हैं। जिस दिन आत्मज्ञान होगा, उस दिन सब छूट जायेगा। अपना मन संस्कारों का पुंज है। उसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार हैं, वे संस्कार रह जाते हैं और हमें प्रेरित करते हैं। आत्मज्ञान से, ईश्वर-दर्शन से सभी संस्कार नष्ट हो जाते हैं और केवल भगवान ही रह जाते हैं।

तृप्ति बाहर नहीं, भीतर से होती है। इसलिए अपनी आत्मा से सन्तुष्ट रहे। जीवन में जो घटना घटती है, जो हमारे कर्मों का फल है, उसे हम मिटा नहीं सकते, किन्तु उसके लिए भगवान से प्रार्थना करें, प्रभु हमें सहने की शक्ति दो। किसी भी परिस्थिति में ईश्वर को न भूलो, हिम्मत न छोड़ो, जिस प्रकार भगवान रख रहे हैं, वैसे आनन्द में रहो। भगवान के शरणागत होकर रहने से सहायता मिलती है। हम घबराते नहीं है। हमें सहने की शक्ति मिलती है। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

हे प्रभो ! मेरे चित्त से मोह दूर हो गया है। मैं अपनी स्मृति को प्राप्त करने में समर्थ हुआ हूँ। आप जैसा चाहेंगे, वैसा ही मैं करूँगा। आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। यह वाक्य पूर्ण रूप से रोग-निदान और स्वास्थ्यलाभ को दर्शाता है। फिर अर्जुन कहता है – **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (४०)

स्वामी सर्वज्ञानन्द

स्वामी चेतनानन्द

स्वामी सर्वज्ञानन्द जी महाराज (१९०२-१९८८) रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ, सरल और सद्गुणसम्पन्न एक संन्यासी थे। तमिलनाडु के नटरामपल्ली केन्द्र से गाँव-गाँव जाकर गरीब-दुखियों की उन्नति हेतु उन्होंने पूरे मनोयोग से कार्य किया था। श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उपदेशों को उन्होंने ग्रन्थ तथा ऑडियो-विडियो मशीन की सहायता से ग्रामवासियों के बीच में प्रचार-प्रसार किया था। १ सितम्बर, १९८६ ई. को रामेश्वर में तथा १९ अक्तूबर को बेलूड़ मठ के साधु-सम्मेलन में स्वामी सर्वज्ञानन्द जी ने अंग्रेजी में उनकी स्मृति को बताया था। मैंने उनके उन दोनों स्मृतियों को टेप में रिकॉर्ड किया था। तदुपरान्त उसका अनुलेखन और सम्पादन करके १९९० ई. के अक्तूबर महीना में वेदान्त केसरी (अंग्रेजी मासिक) में प्रकाशित किया गया था। तत्पश्चात् उसे मैंने बंगला में अनुवाद किया तथा उद्बोधन पत्रिका के ११४ वर्ष के ११वें संख्या में उसे प्रकाशित किया गया। इसके बाद यह स्मृति 'स्वामी शिवानन्दके जेरूपे देखियाछि' (बंगला में) नाम से प्रकाशित हुई।

स्वामी सर्वज्ञानन्द जी महाराज

स्वामी ब्रह्मानन्द जी की स्मृति

१९२१ ई. में मैं रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, मद्रास में विद्यार्थी के रूप में भर्ती हुआ। स्वामी अनन्तानन्द उस समय वहाँ के अध्यक्ष थे। वे मुझे बहुत स्नेह करते थे और श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के विषय में कई कहानियाँ बताया करते थे। मैं उस समय श्रीरामकृष्ण के विषय में बहुत ही कम जानता था। १९१२ ई. में जब मैं गाँव के विद्यालय में पढ़ाई करता था, तब एक दिन प्रधानाध्यापक महोदय के घर की सफाई करते समय एक छोटे बॉक्स में कई चित्र देखा। 'किसका चित्र है' – यह पूछने पर प्रधानाध्यापक महोदय ने कहा, ''यह चित्र श्रीरामकृष्ण देव का और यह स्वामी विवेकानन्द जी का है।'' विवेकानन्द श्रीरामकृष्ण के शिष्य थे और उन्होंने अमेरिका में हिन्दू धर्म का प्रचार किया था। रामकृष्ण-विवेकानन्द के सम्बन्ध में पहले मैं इतना ही जानता था।

जो भी हो, हमारे स्टूडेन्ट्स होम के सचिव रामस्वामी आयंगार ने एक दिन मुझे कुछ सामान मद्रास मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द जी के पास पहुँचाने के लिए कहा। मैं उस समय केवल एक गाँव का लड़का था। उनके द्वारा दिया हुआ कई लम्बा-लम्बा कैंता (snake guard) को छाती से लगाकर दोनों हाथों से पकड़ कर रखा था। उन्होंने मुझ से इसको स्वामी ब्रह्मानन्द जी के चरणों में रखकर प्रणाम करने के लिए कहा। मैं उसको राजा महाराज के पास ले गया, श्रद्धा से कम सचिव के डर से अधिक।

स्टूडेन्ट्स होम से मठ की दूरी एक माईल थी। मार्ग में जाते-जाते मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द जी और स्वामी सर्वानन्द जी को देखा, वे लोग स्टूडेन्स होम ही आ रहे थे। उन दिनों बस और गाड़ियाँ बहुत कम थी। किन्तु साईकिल, बैलगाड़ी बहुत चलते थे। मैं उन्हें देखकर उस अवस्था में क्या करूँ, बहुत सोच-विचार करने पर भी कुछ निर्णय नहीं ले पाया। रामस्वामी आयंगार के आदेश की अवज्ञा करने का भय था; इसीलिए मार्ग में ही मैंने उसी अवस्था में महाराज के चरणों में माथा टेककर प्रणाम किया। किन्तु अब मैं किस प्रकार उठूँ? क्योंकि मेरे तो दोनों हाथों में कैंता (snake guard) था। महाराज ने ही मेरे दोनों बाजू को पकड़कर उठा दिया। यह मेरा अहोभाग्य था। अभी भी मैं यह अनुभव करता हूँ कि महाराज ने मेरे अनजाने में ही मुझे आजीवन के लिए उठा दिया है। श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र का यह आशीर्वाद मैंने अपनी भक्ति से नहीं पाया, अपितु उनकी महानता से पाया था। उन्होंने उस समय मुझे अनाज इत्यादि मठ में पहुँचाकर स्टूडेन्ट्स होम में वापस आने के लिए कहा। मेरे

जीवन में कई अनुभव हुए हैं, किन्तु यह घटना मेरे पास जीवन्त रूप से है। ऐसा लगता है कि अभी-अभी ही यह घटना घटित हुई है।

उस वर्ष (१९२१) महाराज ने मद्रास मठ में दुर्गापूजा का आयोजन किया। कोलकाता से दुर्गाप्रतिमा लायी गयी। प्रतिमा का मूल्य ५००/- रुपया पड़ा था। उन दिनों यह बहुत बड़ी रकम थी। मेरा कार्य था पूजा के लिए फूल तोड़ना, फल और सब्जी काटना। बहुत भव्य रूप से दुर्गापूजा सम्पन्न हुई। स्वामी शिवानन्द जी और ठाकुर के भतीजे रामलाल दादा वहाँ उपस्थित थे। विजयादशमी के दिन स्टूडेन्टस् होम में नाटक का आयोजन हुआ था। जो व्यक्ति कृष्ण का अभिनय कर रहे थे, उनके शरीर पर पीला रंग का वस्त्र, मस्तक के मुकूट में मयूर का पंख और हाथ में बंसी थी।

अभिनय के उपरान्त रामस्वामी आयंगार के एक आत्मीय मोटरबाईक पर उस अभिनेता को मद्रास मठ में महाराज के पास ले गये। अभिनेता अपने पूरे शरीर को सफेद वस्त्र से ढक कर पीछे की सीट पर बैठे थे। मठ पहुँचकर वे भक्त बगल के द्वार से भीतर महाराज को खबर देने गये। किन्तु उनके आगे ही महाराज कमरे से बाहर निकलकर हॉल में आ गये। इसी बीच अभिनेता भी सामने के द्वार से हॉल में आ गये। महाराज ने कृष्णरूपी अभिनेता को देखते ही उसका चरण-स्पर्श करके साष्टांग प्रणाम किया। केवल मैं ही उस दैव-दृश्य का साक्षी था। मुझे ऐसा लगा, मेरे सामने साक्षात् कृष्ण भगवान के आने पर भी मैं उस प्रकार की श्रद्धा नहीं दिखाता। मैं विश्वास नहीं कर पाया कि महाराज एक साधारण अभिनेता को इस प्रकार की श्रद्धा ज्ञापित करेंगे ! वास्तव में, महाराज ने उनके भीतर साक्षात् कृष्ण को देखा था। इस घटना ने मेरे मन पर अमिट प्रभाव डाला था।

प्रतिदिन सन्ध्या के समय संन्यासी और भक्तगण भजन गाते थे; महापुरुष महाराज तबला बजाते और महाराज तथा रामलाल दादा आमने-सामने होकर घूमते-घूमते नृत्य करते थे। मैंने देखा कि महाराज के दोनों नेत्र अर्धनिमीलित है तथा ताली बजाकर मस्त होकर नृत्य कर रहे हैं। मैं उस समय यह सब नहीं समझता था, किन्तु बाद में श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़कर ज्ञात हुआ कि इसका नाम भावसमाधि है।

नारायणस्वामी अय्यर नामक एक भक्त को मैं जानता था, जो मद्रास से ७५ माईल दूर रहते थे। वे 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका के ग्राहक थे और श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और ठाकुर के संन्यासी शिष्यों के विषय में जानते थे। अविवाहित नारायणस्वामी अपनी वृद्धा माँ की सेवा करते तथा एक बगीचा में ८ रुपया महीना में नौकरी करते थे। उनकी एक विशेष इच्छा थी – वे ऐसे एक व्यक्ति का स्पर्श करेंगे, जिसने श्रीरामकृष्ण का स्पर्श किया हो। १९१० ई. में जब श्रीमाँ मद्रास आयीं थीं, तब वे श्रीमाँ के दर्शन के लिए आने हेतु तैयार थे, किन्तु दुर्भाग्यवश उनके परिवार के एक व्यक्ति की मृत्यु होने के कारण, वे नहीं आ पाये।

तदुपरान्त १९२१ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी जब मद्रास आये, नारायणस्वामी अपनी वासना की पूर्ति हेतु मद्रास मठ में उपस्थित हुए। महाराज उस समय स्टूडेन्ट्स होम में थे। वहाँ महाराज ने किसी प्रेतात्मा की उपस्थिति का अनुभव करके प्रतिदिन रामनाम करने की व्यवस्था की थी। नारायणशास्त्री विनय की प्रतिमूर्ति थे। एक दिन १.३० बजे वे स्टूडेन्ट्स होम में आये, उस समय महाराज विश्राम कर रहे थे। उनके सेवक ने महाराज के दर्शन करने के लिए असमय आने पर नारायणस्वामी की भर्त्सना की। सेवक के वार्तालाप को सुनकर महाराज ने सेवक से उस भक्त को उनके पास ले आने के लिए कहा। मैंने परवर्ती काल में नारायणस्वामी को महाराज के साथ उनके साक्षात्कार के सम्बन्ध में पूछा था। उन्होंने कहा था, ''मैं महाराज के कमरे में घुसकर उनके चरणों में फूल और फल रखा। तत्पश्चात् उनके दोनों चरणों को सिर से स्पर्श किया। मेरे दोनों नेत्रों में पानी आ गया। मुझे अच्छी तरह स्मरण नहीं है कि उनके पास कितने समय तक था। फिर भी आनन्द से परिपूर्ण हो गया था। महाराज को स्पर्श करके मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी, क्योंकि उन्होंने ठाकुर को स्पर्श किया था। महाराज ने अपने दोनों हाथ मेरे मस्तक पर रखकर आशीर्वाद दिया और रुकने के लिए कहा। मैंने उनके प्रशान्त मुख को हृदयभर कर देखा। तदुपरान्त उनकी ओर मुख करके पीछे हटते-हटते उनके कमरे से बाहर आ गया। श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र का दर्शन मेरे जीवन की एक सर्वश्रेष्ठ घटना है।''

नारायणस्वामी ने महाराज के चरणों का स्पर्श भक्ति से किया था और मैंने स्पर्श किया था भय से। मेरा विश्वास है कि दोनों का फल एक ही हुआ। श्रीरामकृष्ण ने कहा है, जाने या अनजाने मिर्ची खाने पर मुँह में जलन होगी ही होगी। अभी जीवन के अन्त समय में अतीत के इस पवित्र स्मृतियों को स्मरण करके रोमांच होता है। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा राष्ट्रीय युवा दिवस तथा आजादी का अमृत महोत्सव मनाया गया

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ मुख्यालय एवं सारदापीठ की सहभागिता से व्याख्यानों एवं गीतों से युक्त रंगारंग कार्यक्रम का आयोजन सारदापीठ में किया गया। कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण पूर्वी आंचलिक सांस्कृतिक केन्द्र, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के १०० कलाकारों द्वारा प्रदर्शित नृत्य रहा, जिसमें भारतीय मार्शल कला के भाव को अभिव्यक्त किया गया। कोरोना महामारी के कारण कार्यक्रम सीमित श्रोताओं के समक्ष आयोजित किया गया एवं बेलूड़ मठ के यू-ट्यूब चैनल पर 'लाईव स्ट्रीम' हुआ।

रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क केन्द्र ने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस पर आधारित एक बंगाली पुस्तक का प्रकाशन किया। पुस्तक का शीर्षक है – 'विवेकद्युतिते उद्भासित सुभाषचन्द्र'। महासचिव महाराज ने पुस्तक का विमोचन वर्चुअल माध्यम से २३ जनवरी,२०२२ को किया।

रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द ऐन्सेस्ट्रल हाउस एण्ड कल्चरल सेन्टर, कोलकाता के द्वारा १२ से १८ जनवरी, २०२२ सप्ताहभर तक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में व्याख्यान, भक्ति-संगीत, शास्त्रीय गायन, वाद्य संगीत, नृत्य, सितार-वादन प्रस्तुति और स्वामीजी का भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन पर प्रभाव एवं उनकी बहुमुखी प्रतिभा के भाव पर केन्द्रित चार संगोष्ठियाँ आयोजित की गईं। १२ जनवरी, २०२२ को बंगाल की मुख्यमन्त्री ममता बैनर्जी, विपक्ष के नेता-प्रतिपक्ष शुभेन्दु अधिकारी एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने आश्रम में पधारकर स्वामीजी को पुष्पांजलि अर्पित की।

पश्चिम बंगाल सरकार ने १२ से १८ जनवरी, २०२२ तक राष्ट्रीय युवा सप्ताह मनाया। रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सहयोग से राज्य के विभिन्न स्थानों में विवेक-मेला का आयोजन किया गया।

विदेश स्थित भारतीय दूतावास एवं वाणिज्य दूतावास को भारत सरकार द्वारा दिये गये निर्देशानुसार, इस समारोह को **बांग्लादेश, कैनाडा, फिजी, आयरलैंड, नेपाल, यू.एस.ए** सहित लगभग तीस देशों में, हमारे केन्द्रों की यथासम्भव सहभागिता से उत्साह पूर्वक मनाया गया।

रामकृष्ण मठ और मिशन तथा **भारत सरकार** के सहयोग से आजादी का अमृत महोत्सव, स्वामीजी के विशेष सन्दर्भ में स्वतन्त्रता दिवस (१५ अगस्त, २०२२) तक विभिन्न कार्यक्रमों के साथा मनाया जायेगा।

नेत्र-शिविर एवं अन्य चिकित्सा शिविर आयोजन

निम्नलिखित आश्रमों ने चिकित्सा-शिविर आयोजित कर दीन-रोगियों को चिकित्सकीय सेवा प्रदान की :

रामकृष्ण मिशन, आलो ने ५ जनवरी के चिकित्सा शिविर में ताबा, सोरा गाँव में ४५ रोगियों की चिकित्सा की।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने अक्टूबर से लेकर दिसम्बर तक ६० रोगियों की नेत्र-शल्यचिकित्सा एवं २० रोगियों को चश्मा-वितरण किया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाएटी, जमशेदपुर ने १७ एवं ३० दिसम्बर को नेत्र-शिविर का आयोजन किया, जिसमें १४५ रोगियों की चिकित्सा एवं ५७ की मोतियाबिन्द की शल्य चिकित्सा की गयी।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, खेतड़ी में जनवरी, २०२२ को ६० नेत्र-रोगियों की जाँच की गयी एवं २३ की शल्य चिकित्सा की गयी।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची ने नवम्बर, दिसम्बर, २०२१ एवं जनवरी, २०२२ में नेत्र-शिविर का आयोजन किया, उसमें कुल १२०७ रोगियों की जाँच, ५३ की शल्य चिकित्सा एवं ३८ को चश्मा दिया गया।

रामकृष्ण मिशन आलो

विवेकनगर, आलो, जिला - पश्चिम सिआंग, अरुणाचल प्रदेश, ७९१००१
Email : aalo@rkmm.org, Website : www.ramakrishnamissionaalo.org

सादर विनम्र निवेदन

सन् १९६६ में स्थापित रामकृष्ण मिशन आलो शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आजीविका के क्षेत्र में अरूणांचली आदिवासियों की सेवा कर रहा है। केन्द्र की प्रमुख गतिविधियों में १४०० बालक एवं बालिकाओं के लिए Non-residential English CBSE School (K.G. To XII Std.) कक्षा १ से कक्षा ८वीं तक के २५० आदिवासी बालकों के लिये छात्रावास, कक्षा १ से ४ तक के लगभग ७५० विद्यार्थियों के लिये पिछड़े क्षेत्रों में १३ Non-formal विद्यालय वार्षिक १५००० रोगियों की दूरस्थ सेवार्थ एक धर्मार्थ चिकित्सालय एवं वार्षिक ४५००० लोगों के लिए स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन शामिल है।

आठ महीनों से मौसम की खराबी, बाधित सड़क यातायात, कठिनाई से प्राप्त दैनिक आवश्यकताओं की सामग्री, अधिक वेतन पर प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, छात्रों से न्यूनतम शुल्क एवं राज्य/केन्द्र सरकार द्वारा बहुत ही कम एवं असामयिक अनुदान मिलने के बावजूद मिशन देश के इस दूरस्थ क्षेत्र में शैक्षणिक उत्कृष्टता के केन्द्र के रूप में उभर रहा है।

हम भक्तों, शुभचिन्तकों, पूर्व छात्रों, गैर सरकारी संगठनों एवं औद्योगिक संगठनों से हार्दिक निवेदन करते हैं कि वे हमारे उत्कृष्ट प्रयास में सम्मिलित हो एवं निम्नांकित आवश्यकता की पूर्ति में सहयोग प्रदान करें –

विद्यालय के सुचारु संचालन हेतु	३ करोड़/प्रतिवर्ष
आदिवासी छात्रावास के सुचारु संचालन हेतु	१ करोड़/प्रतिवर्ष
अनुमोदित नवीन योजना	**लागत मूल्य**
१२०० विद्यार्थियों के दैनिक यातायात हेतु २ नयी बसों की खरीदी	५२.०० लाख
३०० विद्यार्थियों के लिये नये छात्रावास का निर्माण	३३.०० करोड़
कर्मचारी निवास का निर्माण (११०४ कर्मचारी)	१५.०० करोड़
चहारदीवारी एवं सड़क की मरम्मत को पूर्ण हेतु (कुल क्षेत्रफल ७४ एकड़)	३.०८ करोड़
बास्केट बॉल, बॉलीबाल, बैडमिन्टन, टेबल टेनिस एवं मल्टी जिम सुविधा युक्त इनडोर स्टेडियम का निर्माण	२.१० करोड़
फुटबॉल स्टेडियम का जीर्णोद्धार	२.६० करोड़
कम्प्यूटर (६५) प्रिंटर (१५), हेवी ड्यूटी इनवर्टर, लैब्रोट्री समान, छोटा जनरेटर, छोटी गाड़ी, स्टील अलमारी (५०) आदि	१.०० करोड़
कुल लागत	**५७.३० करोड़**

न्यूनतम सहयोग राशि भी सधन्यवाद स्वीकार्य की जाएगी और प्राप्ति रसीद भेजी जायेगी। चेक एवं ड्राफ्ट **रामकृष्ण मिशन आलो** के नाम से बनवाकर सचिव को भेज दें। **नोट :** यहाँ स्पीड पोस्ट या कोरियर सेवाएँ नहीं हैं एवं रजिस्ट्री पोस्ट से आने में दो माह का समय लगता है। अत: आपसे अनुरोध है कि **बैंक ट्रांसफर प्रणाली** का प्रयोग करें। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम की धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं।

बैंक ट्रांसफर विवरण (भारतीय दानदाताओं के लिए) **:**
बैंक - State Bank of India, ब्रांच - Along (Aalo), ब्रांच कोड : 01677
खाते का नाम : Ramakrishna Mission Along (Aalo)
बचत खाता नम्बर – 11585486922, IFS Code - SBIN0001677
कृपया बैंक ट्रान्सफर की जानकारी अपने पूरे पते एवं पैन नम्बर के साथ **aalo@rkmm.org** पर ई-मेल द्वारा सूचित करें।
आप सचिव महोदय से मोबाइल नम्बर - **9436638131** एवं **8414814502** पर सम्पर्क कर सकते हैं।
श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द एवं डोनी-पालो मानवता की सेवा हेतु हम सबको आशीर्वाद प्रदान करें।

प्रभु की सेवा में
स्वामी योगीश्वरानन्द,
सचिव